धारा...76 ग्रन्थांङ्क ...289

शोध-बोध गीताञ्जली

(गद्य-पद्यमय)

-आचार्य कनकनन्दी

: पुण्य-स्मरण :

एक परिवार (भूपेश जैन, चितरी) द्वारा आयोजित
सर्वोत्तम चातुर्मास 2017 के पुण्य स्मरणार्थ

स्वैच्छिक अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. स्व. श्री कान्तीलालजी नायक की पुण्य स्मृति में ध.प. श्रीमती कान्ता बाई, पुत्र-पुत्रवधु श्री विरेन्द्र-आशादेवी, श्री पुष्पेन्द्र-मनीषा देवी, श्री अल्पेश-प्रिन्सीदेवी, दामाद-पुत्री - श्री रजतजी-जीनल, पौत्र-पौत्री - सीनल, अक्षत, अक्षिता, निखार चयन, तनीषा एवं समस्त नायक परिवार, मु. लोहारिया (राज.) हाल प्रवास मुंबई (महाराष्ट्र)

ग्रन्थांङ्क-289 प्रतियाँ-500
संस्करण-प्रथम 2018 मूल्य- 101/- रु.

प्राप्ति स्थान एवं सम्पर्क सूत्र

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त
(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा
चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,
उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418
(2) डॉ. नारायणलाल कछारा
सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001
फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622
E-mail:nlkachhara@yahoo.com

विश्व विज्ञानी गुरुवर

- मूल रचनाकार-अक्षय शौर्य
रूपांतर-आ. सुवत्सलमती

(चालः 1. ऐ मेरे वतन.... 2 सायोनारा....)

विज्ञानी ने पूछा सबसे.... ब्रह्माण्ड का ज्ञाता कौन?
कनकनंदी गुरुवर....सबने कहाँ एक स्वर में ।। (ध्रुव)

स्वावलंबी गुरुवर .... श्रेष्ठ मेधावी ऋषिवर....।
सत्यग्राही मुनिवर....अनुभव ज्ञानी सुरिवर ....
लक्ष्य है सिद्ध बनना.... मुक्ति पथ के वे पथिक ....
स्व-आत्मा के है शोधक.... परमागम के बोधक .... (विज्ञानी)(1)

वैश्विक वैज्ञानिक.... आध्यात्म के हो शिक्षक....।
स्वात्म प्रति हो सतर्क.... भेदज्ञान के हो नायक ....
जिज्ञासु की परिक्षा लेते.... तब ही कुछ बोध देते ....
योग्य शिष्य भक्तों के.... प्रश्नों के उत्तर देते .... (विज्ञानी)(2)

चितरी दि. 14.11.2017 मध्याह्न 2.00

कनक गुरु पूजन।(अर्चना)

- रचयिता-कवयित्री विजयालक्ष्मी
सहायक - आ. सुवत्सलमती माताजी

(चालः तुम दिल की ....)

आवो रे सुहागन नारी मंगल गीत गावो रे।
कनकनंदी गुरुवर की पूजा आरती करो रे।। ध्रुव।।

क्षीर व जल से चरण पखारो, मलयागिरी चंदन चढाओ।
(अपने) संक्लेशों को दूर भगाओ, मोती सम अक्षत चढाओ।।
शुभ भावों के सुमन चढाओ, खीर पुडी मोदक (रसभरी) बनाओ।
बादाम अखरोड काजू द्राक्ष, अनेक विंध मेवे खिलाओ।।(1)

मन मंदिर में दीप जलाओ, मोहांधकार दूर भगाओ।
क्रोध-मान-मायादि धूप खेओ।(जलाओ) ध्यानाग्नि प्रज्वलित करो।।
केला आम दाडिम्ब आदि, मधुर सरस फल लाओ।
महामोक्षफल प्राप्ति हेतु-श्री चरणों में चढाओ।।(2)

जल गंधाक्षत पुष्प चरुवर दीप धूप फल लाओ।
अनर्घ्य पद की प्राप्ति हेतु, कनक/(हेम) थाल सजाओ।।
ज्ञानदान से जिनवाणी माँ की, सम्यक् सेवा तुम करो।
ज्ञानोपकरण गुरु को देकर, ज्ञान क्षयोपशम बढाओ।।(3)

गुरु वचनामृत से मैं को जानो, ज्ञानगंगा में खूब नहाओ।
मन को विभावों से दूर करके परमात्मा पद पाओ रे।।
कनक गुरु के ज्ञान-चरित्र से, स्वयं के भाव पवित्र करो। (स्वयं में समता भाव धरो)
मन पर 'विजय' प्राप्त कर, नरभव (मानव जीवन) सफल करो।।(4)

ओबरी दि. 19.12.2017 प्रातः : 7.00

महाज्ञानी ध्यानी कनक गुरु

- कवयित्री विजयालक्ष्मी जैन

(चालः फूलों सा चेहरा ....)

गणधर सा ज्ञान तेरा.... जिनवाणी के लाल हैं ....
शोध/(सत्य) तेरा देख के .... बोध(तथ्य)तेरा देख के ....
दुनिया अचम्भित है.... गणधर ....(ध्रुव)

सारे जहाँ में ज्ञान प्रसारा .... दुनियाँ में फैली जैन भारती ....
कुंदकुंद सा विशाल ज्ञान .... समंतभद्र कलिकाल के ....
कनकनंदी गुरु.... वैश्विक श्रमण हैं.... सत्य तेरा(1)

सारे शिष्यों को ज्ञान है दिया.... साधु-साध्वी या वैज्ञानिक हो....
चाँसलर या न्यायधीश हो.... सभी आपसे अध्ययन करे....
लेखक महाकवि वैज्ञानिक संत है .... सत्य तेरा(2)

वाग्मिता व सरलता का.... मणिकांचन महायोग है ....
वीरसेन स्वामी.... अकलंक स्वामी सी प्रज्ञा है ....
गुणग्राही वृत्ति तेरी .... सबसे निराली है....सत्य तेरा(3)

महावीरकीर्ति विमलसागर.... कुंथुसागर सूरी महान्....
ज्ञानी-ध्यानी.... गुरु भगवंत .... के आप रूप है....
समता-निस्पृहता देखकर .... 'विजया' भी हैरान है.... सत्य तेरा(4)
ग.पु.कॉ. सागवाड़ा दि. 30.06.2017

शोध-बोध हेतु मेरा प्रयत्न

- आचार्य कनकनंदी

(चाल: छोटी-छोटी गैया ....)

विविध शोध-बोध हेतु करूँ प्रयत्न,
सनम्र सत्यग्राही सह उदार चित्त।
जो सत्य है उसे मैं मानूँ मेरा,
पक्षपात-भेदभाव रहित सारा।।1।।

परीक्षण-निरीक्षण करूँ में सदा,
सापेक्ष दृष्टि से विचार करूँ मैं मुदा।
अध्ययन, मनन व चिन्तन करूँ ,
हिताहित विवेक से ग्रहण करूँ ।।2।।

मेरे हेतु सत्य ही है परम प्रमाण,
आत्महित को सर्वोपरी करूँ मैं ग्रहण।
हठाग्रह-पूर्वाग्रह-दुराग्रह त्यजूँ,
समता-शान्ति सहित हित ही भजूँ।।3।।

कोई माने या ना माने चिन्ता न करूँ,
अन्य को मनाने हेतु हठ न करूँ।

कोई सत्य माने तो उसे पढ़ाऊँ,
इस हेतु संकल्प-विकल्प-क्लेश न करुँ।।4।।

कार्यकारण व निमित्त उपादान सहित,
वस्तु स्वभावमय कार्यकारण रिक्त।
नय प्रमाण व निक्षेप से सहित,
श्रद्धा-प्रज्ञा व अनुभव से युक्त।।5।।

स्व-पर दोष गुणों से शिक्षा मैं लहूँ,
अन्य के दोषों से दूर मैं रहूँ।
स्वयं जलकर ही मैं शिक्षा न लहूँ,
अग्नि स्वभाव ज्ञान से मैं नहीं जलूँ।।(6)

अनुभव से अनुभव में बढ़ाता चलूँ,
एक अनुभव से अन्य अनुभव को जोडूँ।
साहचर्य व चैन-रियेक्शन से बंदू,
एक बीज बोकर असंख्य बीज पाऊँ।।7।।

सर्वज्ञ हितोपदेशी आप्त के बिना,
अन्य को न स्वीकारूँ परीक्षा बिना।
अज्ञानी मोही स्वार्थी को आप्त न मानूँ,
तथापि उनसे राग-द्वेष मोह न करूँ।।8।।

मेरे अनुभव व स्वप्न-शकुन द्वारा,
अन्तः प्रेरणा, भावात्मक कल्पना द्वारा।
ज्ञात होते मुझे अनेक अज्ञात तथ्य,
जो सामान्यजन से ले विज्ञान-अज्ञात।।9।।

पूर्व में जो मैंने जाना व माना,
ग्रन्थों में लिखा व शिष्यों को पढ़ाया।
देश-विदेशों में आगे होते घटित,

वैज्ञानिक शोध से (आगे) होते भी सिद्ध।।10।।

इससे आत्मश्विास मेरा बढ़ रहा है,
आत्मिक-शक्ति का अनुभव हो रहा है।
शोध-बोध हेतु जिज्ञासा बढ़ ही रही,
समता-शान्ति-निस्पृहता बढ़ ही रही।।11।।

इस हेतु विविध साहित्य पढ रहा हूँ,
विदेशी वैज्ञानिक चैनल देख रहा हूँ।
ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि-वर्चस्व बिना,
अध्यापन-लेखन करुँ दंभ(स्वार्थ) के बिना।।12।।

भक्त-शिष्य भी लाभान्वित हो रहे,
देश-विदेशो में प्रचार कर रहे।
यथायोग्य सहयोग भी वे कर रहे,
तन-मन-धन-श्रम(समय) से कर रहे।।3।।

इस हेतु एकान्तवास व मौन में रहूँ,
बाह्य प्रपंच-आडम्बर-द्वन्द मैं त्यागूँ।
सत्य देवता की सदा मैं करुँ आराधना,
'कनक' का लक्ष्य परम सत्य को वरुँ।।4।।

ओबरी 31.12.2017, रात्रि 11.26

ध्यान-योग्य, योग्यता एवं परिस्थिति

संदर्भ -

अभवच्चितविक्षेपः एकान्ते तत्वसंस्थितः।
अभ्यस्येदभियोगेन, योगी तत्वं निजात्मनः।।(36)

[illegible]

संयमी-योगी को आलस्य निद्रादि को निरसन (जय) करके योग्य शून्य गृहादि में स्वात्मा का अभ्यास करना चाहिए। बाल्य मनुष्यादि रहित एकान्त स्थान में तथा अंतरंग राग, द्वेषादि रहित एकान्त-भाव से योगी को निजात्मा का ध्यान करना चाहिए। क्योंकि दोनों प्रकार की एकांत से रहित अवस्था में स्थित होने पर विक्षोभ उत्पन्न होता है जिससे आत्म-ध्यान नहीं हो पाता है।

समीक्षा : अनादिकाल से यह जीव स्व स्वरूप से बहिर्मुख होकर इन्द्रियाँ एवं मन के माध्यम से स्व-शक्ति का विघटन, बिखराव, ह्रास एवं क्षय कर रहा है। इसको ही बाह्य प्रवृत्ति, कुध्यान, अपध्यान, आर्तध्यान, रौद्र-ध्यान, संसारवर्धिनीध्यान कहते हैं। बाह्य से निवृत्ति होकर स्व में रमण रूप प्रक्रिया को ही सुध्यान, धर्मध्यान,शुक्लध्यान,योग,लीनता,समाधि आदि से अभिहित करते है।

इच्छा निरोधःध्यानःइच्छा का सम्यक् रूप से निरोध करना ध्यान है। उमास्वामी आ. श्री ने मोक्षशास्त्र में कहा भी है-

'एकाग्र चिन्ता निरोधोध्यानं' चित्त को अन्य विकल्पों से हटाकर एक ही विषय में लगाने को ध्यान कहते हैं। महर्षि पतन्जलि ने भी ध्यान का लक्षण कहते हुए पतंजलि योग दर्शन के प्रथम चरण में ही कहा है-

''योगश्चित्तवृति निरोधः''

चित्त की वृत्तियों का जो निरोध है वह योग कहा जाता है। गीता में श्री कृष्ण ने कहा है- समत्व योग उच्यते(2:48) बुद्धि की समता या समत्व को ही योग(ध्यान) कहते हैं अथवा ''योगः कर्मसु कौशलम्'' (2:50) अर्थात् शुभाशुभ से मुक्त होकर कर्म करने की कुशलता को योग कहते हैं।

उपरोक्त सिद्धान्त से यह सिद्ध होता है कि मन (बुद्धि, चित्त) की प्रवृत्ति अन्य-अन्य विषय से हटकर एक विषय में स्थिर भाव से केन्द्रीभूत हो जाना, लीन हो जाना, स्थिर हो जाना ही ध्यान है। अतएव ध्याता को ध्यान करने के लिये जो अनिवार्य तथा प्रथम एवं प्रधान नियम है उसका वर्णन आचार्य पूज्यपाद स्वामी समाधि तन्त्र में निम्न प्रकार कहे हैंः

यतैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तत्रैव जायते।
यत्रैव जायते श्रद्धा चित्तं तत्रैव लीयते।।95।।

मनुष्य की बुद्धि में जो बात दृढ़ता से बैठ जाती है उसको उसी विषय का श्रद्धान या रुचि विश्वास हो जाता है और जहाँ रुचि पैदा हो जाती है, उसी विषय में सोते जागते तथा पागलपन या मुर्छित दशा में भी उसका मन रमा रहता है।

आत्मदृष्टा पुरुष की बुद्धि में आत्मा समाया हुआ होता है। इस कारण सब दशा में उसका मन अपने आत्मा में ही लगा रहता है। बहिरात्मा की बुद्धि अपने शरीर की ओर लगी रहती है, अतः अपने शरीर को ही अपने सर्वस्व(आत्मा) की श्रद्धा से देखा करता है, इसी कारण सोते जागते आदि सभी अवस्थाओं में उसका मन शरीर में ही लीन रहा करता है।

यत्रैवाहितधीःपुंसः श्रद्धा तस्मान्निवर्तते।

यस्मान्निवर्त्तते श्रद्धा कुतश्चियत्तस्य तल्लयः ।।96।। समाधि तंत्र

मनुष्य की बुद्धि में जो बात ठीक नहीं समाती उस बात में उसको श्रद्धा रुचि नहीं होती और जिस विषय की श्रद्धा नहीं होती है उस विषय में उसका मन भी लीन नहीं होता। तदनुसार अन्तरात्मा की बुद्धि में अपनी आत्मा समायी रहती है। अतः शरीर में उसकी रुचि नहीं होती इसी कारण से वह आत्मा में लीन रहता है, शरीर में उसकी नहीं होती। इसके विपरीत बहिरात्मा की समझ में शरीर के सिवाय आत्मा और कुछ नहीं है। अतः उसकी श्रद्धा आत्मा में नहीं होती। इसी कारण उसका मन भी आत्मा में लीन नहीं होता। यह जीव अनादिकाल से संसार शरीर भोग, उपभोग इन्द्रिय विषय के राग-रंग में रचा-पचा अनुभव किया सुना है। इसलिये वह विषय अनुभूत होने के कारण स्वस्वरूप सबसे अधिक निकटवर्ती होने पर भी मन की प्रवृत्ति स्वयमेव सहजरूप से विषयों की ओर हो जाती है। परन्तु इससे विपरीत स्व स्वरूप का भान अनुभव नहीं होने के कारण स्व स्वरूप सबसे अधिक निकटवर्ती होने पर भी मन की प्रवृत्ति स्व में सरलता से नहीं होती है। इसलिये बाह्य द्रव्यों से चित्त को हटाकर स्व में स्थिर करने के लिए स्वयं का मनन चिन्तन परिज्ञान सतत करना चाहिये। पूज्यवाद स्वामी ने समाधि तन्त्र में कहा है-

तदबृयात्तत्परान्पृच्छेत्तदिच्छेत्तपरो भवेत्।

येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत।।52।।

आत्म श्रद्धालु को वह आध्यात्मिक चर्चा करनी चाहिए वह आत्मा सम्बन्धी

ही बातें अन्य विद्वानों से पूछनी चाहिए। उसी आध्यात्मिक विषय की चाह रखनी चाहिए। उसी आध्यात्मिक विषय में सदा तत्पर, तैयार या उत्सुक रहना चाहिये। जिससे अपनी आत्मा का अज्ञान भाव छोड़कर ज्ञान भाव प्राप्त हो।

गीता में कर्मयोगी नारायण श्री कृष्ण ने भी ध्यान के विषय में वर्णन करते हुये कहा है-

अविद्या, रागद्वेष इन्द्रिय विषय में रमायमान चित्त सर्वदा चंचल एवं क्षुभित रहता है इसलिये मन को स्थिर करना शीघ्र सहज साध्य नहीं है। मन को स्थिर करने के लिए जब श्री कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं तब अर्जुन श्रीकृष्ण को निम्न प्रकार अपना भाव प्रगट करते है

चंच्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढ़म्।

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।। 34।। **अध्याय 6**

हे कृष्ण यह मन चंचल, हठीला बलवान और 'दृढ' है। वायु के समान अर्थात् हवा को गठरी बाँधे के समान इसका निग्रह करना मुझे अत्यन्त दुष्कर दिखता है।

श्री कृष्ण अर्जुन की वास्तविक परिस्थिति एवं कठिनाईयों को अनुभव करके निम्न प्रकार सम्बोधन करते हैं-

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।

अभ्यासेन तु कौतेय वैराग्येण च गृह्यते ।।35।।

असंयतात्मना योगो दुष्प्रावृत इति मे मतिः।

वश्यात्मना तु यतता शक्याऽवाप्तुमुपायतः।।36।।

है महाबाहु अर्जुन! इसमें संदेह नहीं, कि मन चंचल है और उसका निग्रह करना कठिन है, परन्तु है कौन्तेय! अभ्यास! अभ्यास और वैराग्य से वह स्वाधीन किया जा सकता है। मेरे मत में जिसका अन्तःकरण काबू में नहीं, उसका(इस साम्यबुद्धि रूप) योग का प्राप्त होना कठिन है, किन्तु अन्तःकरण को काबू में रखकर प्रयत्न करते रहने पर, उपाय से (इस योग का) प्राप्त होना सम्भव है।

जैसे जल स्वभावतः तरल एवं निम्नगामी है उसी प्रकार मन भी निम्नगामी है। मन की प्रवृत्ति विषय, कषाय में, राग-द्वेष में, राग रंग में होना सहज-सरल है। जैसे

जल को घन या उर्ध्वगामी बनाना श्रम साध्य एवं समय साध्य है, उसी प्रकार मन को निर्मल एवं स्थिर करना श्रम साध्य एवं समय साध्य है। जब जल तरल रहता है तब जल स्वाभाविक रूप से अधोगमन करता है परन्तु जब घन तुषार रूप परिणमन करता है तब जल अधोगमन नहीं करता है। उसी प्रकार मन, ज्ञान, वैराग्य, संयम, मनन-चिंतन, अनुप्रेक्षा अभ्यास के बल से दृढ़ घनीभूत हो जाता है। तब मन अधोगामी (विषय कषायों की ओर प्रवृत्ति करना) चल(अस्थिर, क्षुभित, अशांत व्यथित) नहीं रहता है। मन को निर्मल, स्थिर, शांत बनाना विश्व का सर्वश्रेष्ठ एवं सबसे क्लिष्ट कार्य है। मन चंचल होने के कारण राग-द्वेष है, एवं मन स्थिर होने का कारण राग-द्वेष की निवृत्ति है।

रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनो जलम्।
स पश्यत्यात्मस्तत्त्वं तत्तत्वं नैतरो जनः ।।35।। समाधि तन्त्र

जिस पुरुष का मन रूपी जल, राग-द्वेष, मोह, मद, क्रोध, लोभ, माया आदि की लहरों से चंचल नहीं है, वह मनुष्य अपने आत्मा के वास्तविक स्वरूप को अपने निर्मल मन में देख लेता है। अन्य मनुष्य उस आत्मा के स्वरूप को नहीं देख पाता।

अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्तिरात्मनः।
धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रेत्ततः।।36।।

मोह-मिथ्यात्व और राग-द्वेष आदि के क्षोभ से रहित मन आत्मा का स्वभाव है और मोह तथा राग-द्वेष से व्याकुल मन आत्मा की भ्रान्ति अर्थात् भ्रम है। इसलिए राग-द्वेष मोह से रहित शुद्ध मन बनाना चाहिए। राग, द्वेष, मोह आदि दुर्भावों से मन को मलीन नहीं करना चाहिये।

अविद्याभ्यास संस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः।
तदैव ज्ञान संस्कारै, स्वतस्त्त्वेऽवतिष्ठते।।37।।

मन अज्ञान के अभ्यास के संस्कारों द्वारा अपने वश में न रहकर इन्द्रियों के विषय भोगो में फँस जाता है वही मन आत्मा शरीर के भेद-विज्ञान के संस्कारों से अपने आत्म स्वरूप में ठहर जाता है।

तैयारी ... आदर्श अग्निहोत्री ... पढ़ाई के लिए मेहनत करना जरुरी है। लेकिन मेहनत किस दिशा में की जाए ये जानना उससे अधिक जरुरी है।

इस बार कुछ नए तरीके समझकर, उम्मीद है आप परीक्षा में बेहतर प्रदर्शन कर सकेंगे

पढ़ाई को बोझ नहीं, आसान बनाएं

बचें......एक सिटींग से

लंबे समय तक पढ़ाई के बजाय थोड़े वक्त तक ही पढ़ें। यहां हम एक सिटींग यानी एक बार में लंबे समय तक बैठकर पढ़ाई करने की बात कर रहे हैं। कई अध्ययनों में साबित हुआ है कि हिस्सों में बांटकर की गई पढ़ाई ज्यादा प्रभावशाली साबित हुई है। किसी विषय या अध्याय के लिए 10 घंटे रट्टा मारने से बेहतर है कि उसे समझकर पढ़ें और बार-बार रिवीजन करें। ऐसा इसलिए क्योंकि हमारा दिमाग छोटे-छोटे हिस्सों में की गई पढ़ाई को एक बड़े हिस्से में की गई पढ़ाई की तुलना में ज्यादा जल्दी याद रख पाता है।

जरुरी उद्देश्य तय करना

बिना विषय तय किए अध्ययन करने की बजाय किसी एक विषय (टॉपिक) को चुनकर अच्छी तरह समझकर पढ़ें। कई बार हम सारे विषय एक साथ लेकर बैठ जाते हैं और कुछ समझ में न आने की स्थिति में दूसरा विषय लेकर उसे पढ़ने बैठ जाते हैं। ऐसे में दोनों ही विषय अधूरे रह जाते हैं। इसलिए पढ़ाई शुरु करने से पहले तय करें कि किस विषय को पढ़ना है। अगर बोरियत महसूस कर रहे हैं, तो विषय बदल सकते हैं, लेकिन उसमें भी थोड़ा आराम का अंतराल जरुरी है। कहा भी गया है 'टू चेंज द सब्जेक्ट इज द रेस्ट.....'

सलाह समझे फिर समझाएं

एक अध्ययन के दौरान विद्यार्थियों के दो समूह बनाए गए। दोनों को एक ही विषय दिया गया। एक समूह के विद्यार्थियों को कहां गया कि इस विषय की परीक्षा देनी है और दूसरे समूह को बताया गया कि आपको इसे दूसरे विद्यार्थियों को समझना हैं। जिस समूह को पढ़ाने के लिए बोला गया था उनकी उस विषय में तैयारी और समझ दूसरे समूह को तुलना में बेहतर थी क्योंकि जब आप किसी विषय की पढ़ाने की उम्मीद रख के तैयारी कर रहे होते हैं तब दिमाग जानकारी का आयोजन बेहतर तरीके से करता है।

एप्पल

कम्पनी के को-फाउंडर जॉब्स सुबह उठकर शीशे के सामने खड़े होते और खुद से सवाल करते 'अगर आज मेरी जिदंगी का अंतिम दिन है और आज जो काम करने जा रहा हूं क्या उससे मैं खुश होऊंगा या नहीं इन्हें इसका जवाब अगर न में मिलता तो समझते थे कि उस काम में बदलाव करने की जरुरत है।

2016 में 9 हजार छात्रों ने की आत्महत्या

नई दिल्ली पत्रिका लोकसभा में पूछे गए एक सवाल के जवाब में केंद्रीय गृह राज्य मंत्री हंसराज अहीर ने बताया कि 9474 छात्रों ने 2016 में आत्महत्या की थी यानी हर 55 मिनट में एक छात्र को अपनी जान गंवानी पड़ी थी।

दरअसल फैक्टचैकर ने युवाओं की आत्महत्या से संबंधित एक आंकड़ा जारी किया था। जिसे लोकसभा में पेश किया गया। फैक्टचैकर के रिपोर्ट के मुताबिक पढ़ाई में लगातार अच्छा करने के दवाब की वजह से अक्सर बच्चे डिप्रेशन के शिकार होते हैं। कई बच्चे इस दवाब को झेल नहीं पाते और आत्महत्या कर लेते हैं।

इस रिपोर्ट के अनुसार 2007 के मुकाबले छात्रों के आत्महत्या के मामलों में 52 फिसदी की बढ़ोतरी 2016 में देखी गई। परीक्षा में फेल होने की वजह से 2,413 बच्चों ने आत्महत्या की। 1350 मामलों के साथ महाराष्ट्र में सबसे ज्यादा आत्महत्या का मामला सामने आया। पश्चिम बंगाल में 1,147 बच्चों ने परीक्षा के डर से 2016 में आत्महत्या की। साथ ही कई दूसरी वजहें भी थी जिसने इन्हें आत्महत्यायें की।

सर्जनात्मक चिन्तन

डा.. गंगन प्रताप एवं डॉ. ज्ञानेन्द्र मिश्र

सर्जनात्मक चिन्तन लेखन का हृदय एवं आत्मा है। यह मात्र साहित्यिक लेखकों, कवियों, दार्शनिकों के लिये ही नहीं वरन् व्यापारियों, अर्थशास्त्रियों, तकनीकी विशेषज्ञों तथा अन्य बुद्धिकर्मियों के लिये भी उतना ही सच है।

सर्जनात्मक चिन्तन को इस तरह परिभाषित किया जा सकता है 'वह मानसिक

क्रिया जो एक नई समस्या सुलझाती है या नयी विधि या धारणा प्रस्तुत करती है अथवा पुरानी समस्याओं एवं विचारधाराओं पर नया प्रकाश डालती है'।

सर्जनात्मक चिन्तक मात्र उन्हीं धारणाओं को प्रयोग में नहीं लाता जिन्हें उसने दूसरों से सीखा है। इससे उसकी स्मरणशक्ति ही कार्य नहीं करती, बल्कि उसका मस्तिष्क भी कार्य करता है। वह पुराने विचारों या अवधारणाओं का प्रयोग उसी तरह से करता है जैसे कोई भवन निर्माणकर्त्ता पुरानी ईंटों का प्रयोग करता है पर उनसे नया परिरूप, नूतन अभिकल्पना प्रस्तुत करता है।

सर्जनात्मक चिन्तन : 'वह मानसिक क्रिया जो एक नई समस्या सुलझाती है या नयी विधि या धारण प्रस्तुत करती है अथवा पुरानी समस्याओं एवं विचारधाराओं पर नया प्रकाश डालती है।'

एडीसन, जो अपने समय के सबसे उर्वर आविष्कारक रहे हैं और जिन्होंने एक हजार से भी अधिक पेटेन्ट किए थे, किसी समस्या पर कार्य आरम्भ करने से पहले उस विषय पर लिखी सभी पुस्तकें पढ़ते थे। वे कहते थे 'मुझे वहां से शुरुआत करनी है जहां सभी पुस्तकें समाप्त होती है। वे अपरिहार्य रूप में दुसरों की विचारधाराओं का यथा सम्भव प्रयोग करते थे और वे तत्कालीन विचारकों में सबसे अधिक रचनात्मक थे।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, शेक्सपीयर ने अपने प्रकरणों और बहुत सी कथावस्तुओं को दूसरे स्रोतों से लिया है पर उन्होंने जो भी दूसरों से उधार लिया उसे अपनी जादुई प्रतिभा से अभिजातवर्गीय बना दिया।

हम यह स्पष्ट रूप से नहीं जानते कि मस्तिष्क में नयी धारणाएं, नयी योजनाएं, कैसे जन्म लेती हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि वे अवचेतन मन में स्फुटित होती हैं। दूसरे वैज्ञानिक मानते हैं कि मस्तिष्क में चेतन प्रवृत्ति के अंग सेरेब्रम में न्यूरॉनों के नये संयोग से नये विचार आते हैं। काश, हमारे पास ऐसा कोई सूत्र होता।

प्रख्यात वैज्ञानिक हेल्महोल्ज ने अपने सत्तरवें जन्मदिन पर अपने अभिभाषण में बताया कि उन्हें नये विचार कैसे आते हैं। उन्होंने कहा, 'मैं प्रायः अपने आपको

असहज अवस्था में पाता हूँ जबकि मुझे नई धारणाओं को मस्तिष्क में जाने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। मैंने इस बात का अध्ययन किया कि प्रायः नये विचार कैसे आते हैं। वे कुछ इशारा करते हुए चुपके-चुपके विचारों के प्रवाह में प्रवेश कर जाते हैं। वे यादों के साथ घुल-मिल जाते हैं।

कभी-कभी वे अकस्मात्, अनायास ही आ जाते हैं जैसे वे अन्तःप्रेरणा हो।

पर जहां तक मेरा अनुभव है, वे कभी भी बुरी तरह थके मस्तिष्क में नहीं आते और शायद ही तब जब में लिख रहा होता हूँ। 'सबसे पहले मुझे समस्या पर सभी दृष्टि से विचार करना होता हैं। मुझे अपने आंकड़ों को वर्गीकृत करना होता है। उसके बाद में अपने मस्तिष्क को एक घंटे का पूरा आराम देता हूँ। इसके पश्चात् जब मेरा मस्तिष्क तरोताजा हो जाता है तब नये विचार आते हैं। प्रायः सुबह जब मैं जागता हूँ तब और कभी-कभी जब में अपने घर के पास खुली पहाड़ियों पर टहल रहा होता हूँ।

मस्तिष्क एक चिन्तन करने की मशीन है पर इसमें संवेदनाएं भी होती हैं। इसमें स्वभाव होता है और चरित्र भी। पर सही अर्थों में मस्तिष्क संपूर्ण मानव होता है। जो कुछ भी व्यक्ति के स्वभाव के आस-पास होता है। वह सब उसके मस्तिष्क की सर्जनात्मक क्षमता में जुड़ जाता है।

नये विचारों के सृजन का यह हेल्महोल्ज फार्मूला है। सबसे पहले उन सभी तथ्यों को, जिन पर आपको विचार करना है, उन्हें मस्तिष्क में भरिये। फिर आराम कीजिए या सो जाइए। पुनः जैसे ही मस्तिष्क की थकान दूर होगी, नये विचार स्वतः आने प्रारम्भ हो जायेंगे।

इन सूत्रों में मुख्य रूप से तीन अवयव हैं जिन्हें हम याद रखने के लिये ठीक से समझेंगेः

दूसरे जर्मन विद्वान शिलर का मानना था कि उनमें विचार, जब धूप खिली हुयी हो तभी सबसे आसानी से आते हैं। एक बार वे गेटे को लिखते हैं-

'जब प्रकृति हमें असफल करती है तो व्यक्ति कितना निष्प्रभावी होता है। एक समस्या पिछले पांच हफ्तों से मुझे निष्फल कर रही थी पर जैसे ही आसमान साफ

हुआ, मैंने वह समस्या तीन दिनों में सुलझा ली।

ऐसे देश, जहां पूरे समय लगातार कड़ी धूप होती हैं, प्रायः वहां से बड़े-बड़े अनुसंधान और धारणाएं कम ही आती है। अधिकांश महान विचार अधिकांशतः उन्हीं देशावासियों से आते हैं जहां खराब मौसम रहता है।

कुछ बुद्धिकर्मी संगीत से प्रेरणा लेते हैं तो कुछ प्रकृति की नैसर्गिक छटा से। दूसरी तरफ वाल्ट वाइटमैन भीड़ भरी गलियों या लोगों की भीड़ से प्रेरणा लेते थे। संभवतः बहुत से आविष्कारक मशीनों की कचर-पचर से भी प्रेरणा लेते हैं।

कृस्तीयांनसन का कहना है कि सर्जनात्मक चिन्तन की समस्या है कि कैसे मस्तिष्क की पूरी क्षमता विचाराधीन विषय पर लगाई जाय।

इसका अर्थ यह है कि यदि हम मस्तिष्क की पूरी क्षमता से किसी एक विषय पर विचार करना चाहें तो हमें अन्य विषयों से ध्यान हटाना पड़ेगा। इससे यह बात समझ में आती है कि क्यों बहुत से विद्वान अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिये लम्बे समय तक एकान्त में चले जाते हैं। इसी से यह भी स्पष्ट है कि क्यों रायम में **मस्तिष्क में सबसे पहले आंकड़े होने चाहिये। मस्तिष्क थका नहीं होना चाहिये। मस्तिष्क किसी के प्रभाव में नही होना चाहिये। नये विचारों के सृजन के लिये मस्तिष्क पूरी तरह से स्वतंत्र होना चाहिए। बरसात के बाद खिली-खिली धूप से मन जब आह्लादित हो उठता है तो निश्चय ही मस्तिष्क की सर्जनात्मक क्षमता बढ़ जाती है। प्रत्येक मस्तिष्क का अपना अलग-अलग प्रेरणा स्रोत होता है**

बहुत से महान विचार एवं धारणाएं झोपड़ियों में जन्म लेती हैं न कि महलों में। क्यों, क्योंकि झोपड़ियों में कोई बहकाने वाली वस्तुएं नहीं होती, कोई प्रलोभन नहीं होता है। वहां सर्जनात्मक विचारों के अलावा और कोई लगाव नहीं होता। भोग विलास में डूबे रहने पर हमें महान विचारों की आशा नहीं करनी चाहिये।

किसी के स्वभाव को बदलना आसान नहीं होता इसलिये उन्हें अपने स्वभाव एवं प्रकृत्ति का आदर करना चाहिए। उसे अपनी मनोदशा का अनुसरण करना चाहिए। उसे अपनी सर्जनात्मक मनोदशा को पूरा संवेग देना चाहिए न कि अपने आप

को सामान्य अवस्था में लाने का प्रयास। सभी महान संगीतकार एवं कलाकार उस तरह की प्रवृत्ति रखते रहे हैं जो उनके लिए बहुमूल्य रही हों।

कुछ विचारकों का स्वभाव होता है कि जो कुछ भी उनके मस्तिष्क मेंआ गया उसे पूरा करने की ठान लेते हैं

मस्तिष्क कई धाराओं में बहने वाली नदी की तरह हैं। यदि इनमें से एक धारा को बन्द कर दें तो अन्य धाराओं में जल प्रवाह बढ़ जायेगा और एक को छोड़कर यदि सभी धाराओं को बन्द कर दिया जाय तो बची हुई धारा में, नदी का पूरा जल अपने पूरे वेग से प्रवाहित होगा।

प्रत्येक बुद्धिकर्मी को शान्त भाव से अध्ययन करना चाहिए। अपने कार्यालय में नहीं, वरन ऐसी जगह जहां कोई व्यवधान उपस्थित न हो। यहां वह उन समस्याओं का हल ढूंढ सकता है जो उसे बार-बार असफल करती रही है। यहां वह उन योजनाओं को बना सकता है जो उसके भविष्य के लिये अति आवश्यक हैं, वह सभी कार्य जहां गहन चिन्तन की आवश्यकता है।

जब कोई विचारक अकेला होता है। जब वह आग्रह करती इन्द्रियों के शोर-गुल को चुप करा देता है तब जाकर उसकी जीवनशक्ति अपनी पूरी सामर्थ्य से विचारों के सृजन में लगती है।

पत्रकार कभी-कभी विचारक भी होते हैं। वे समसामयिक राय एवं दिन भर की खबरों से ही वास्ता रखते हैं।

सर्जनात्मक विचार त्याग मांगता है। जिन लोगों को महान विचार चाहिए उन्हें इसका मूल्य चुकाना होता है और धन इसका मूल्य नहीं चुका सकता।

एडीसन जब किसी गम्भीर समस्या पर कार्य कर रहे होते थे तो कई दिनांक तक भोजन एवं निद्रा का त्याग कर देते थे। वे मस्तिष्कको उसकी अन्य जलधाराओं में जल का प्रवाह रोक कर पूरी क्षमता पर कार्य करने को विवश करते थे।

इसमें याद रखने योग्य यह है कि किसी भी व्यक्ति का जीवन संपूर्णता में एक ही जीवन शक्ति है- मानसिक शारीरिक एवं आध्यात्मिकता का सम्मिश्रण जिसका कोई नाम नहीं है। यदि हम इस शक्ति को किसी समस्या पर केन्द्रीत करें, यदि हम

अपने जीवन की संपूर्ण शक्तियों को एक मूल बिन्दु पर प्रक्षेपित करे तो हमारा सर्जनात्मक चिन्तन अपनी चरण सीमा पर पहुँच सकता है, पर यह शायद ही कभी हो पाता है। जब भी कोई व्यक्ति यह कर पाता है तो दुनिया उसे प्रतिभाशाली कहती है व्यवहारिक रूप से देखें तो सामान्य आदमी के लिये व्यवधानों के बीच सर्जनात्मक चिन्तन लगभग असम्भव है। कोई भी व्यक्ति, जब टलिफोन की घंटियाँ बज रही हो, उसके ऑफिस के लोग पत्रावलियों के साथ उसके आस-पास दौड़ लगा रहे हों और बहुत से लोग उसके कमरे के बाहर मिलने के लिये बैठे हों, तो ऐसे में वह अपनी समस्याएं नहीं सुलझा सकता।

यही वह कारण है कि कोई भी सम्मेलन या संसद इतनी कम समस्याएं सुलझा पाती है। विचार बहस से नहीं जन्म लेते। बातचीत या भाषण देने में मस्तिष्क की रचनात्मक क्षमताओं का उपयोग नहीं होता जैसा कि हम जानते हैं कि एक सक्षम वक्ता प्रायः सतही चिन्तक होता है।

वे प्रायः पूरे समय बाजार में ही रहते हैं पर कोई औद्योगिक उत्पादन नहीं करते। यदि किसी देश का नेतृत्व मीडिया द्वारा या पत्रकारों द्वारा किया जाता है तो यह अयोग्य नेतृत्व, अनुपयुक्त नेतृत्व होता है। एक उत्तेजक समाचार से दूसरे उत्तेजक समाचार तक।

क्या आपको नहीं लगता कि आज की सबसे बड़ी समस्या है कि देश के नेतृत्व को प्रेस, संसद एवं राजनीति से जैसा कि आप देख रहे हैं कि यदि आपको विचारों का उत्पादन करना है, योजनाएं बनानी हैं, आविष्कार करने हैं तो संकल्प शक्ति आवश्यक है।

यदि निष्कर्ष को एक शब्द में कहें तो दुनिया की सबसे बड़ी सर्जनात्मक शक्ति है प्यार। यदि आप माँ को, पत्नी को, बच्चों को और अपने मित्रों को यदि प्यार करे तो मस्तिष्क के लिये इससे अधिक प्रेरणा का स्रोत कुछ हो ही नहीं सकता।

कैसे बचाया जाय? कैसे सर्जनात्मक चिन्तक एवं विचारक देश का नेतृत्व करें? अभी तक किसी भी सम्प्रभुत्व राष्ट्र ने इस समस्या का समाधान नहीं किया है।

कभी-कभी ऐसा लगता है कि इसका समाधान एक बुद्धिमान तानाशाह ही कर सकता है पर अभी तक हम यह नहीं सीख पाये हैं कि ऐसा प्रजातन्त्र कैसे बने जिसमें सबसे योग्य व्यक्ति हमारा नेतृत्व करे।

जो भोग-विलास के लिये जीते हैं उन्हें भोग-विलास मिलेगा और जो विचारों के लिये जीते हैं उन्हें ही विचार मिलते हैं।

यदि किसी व्यक्ति को स्वतन्त्र विचारक बनना है तो उसे अन्य बहुत-सी इच्छाओं पर नियन्त्रण करना पड़ेगा। उसे अपने आपको विलासिता और सामाजिक बन्धनों से मुक्त करना होगा। कम से कम उस समय तक जब तक उसकी सर्जनात्मक विचारों की अवस्था रहती है, उसे ऐसा करना ही पड़ेगा। तभी उसकी जीवन शक्ति की धार हिलोरे मारती हुयी एक ही जलधार में अपनी पूरी क्षमता से बहने लगेगी और तभी विचारों का सृजन भी होगा।

यदि मस्तिष्क को अपनी पूरी क्षमता के साथ किसी कार्य पर एकाग्र होने का अवसर प्राप्त हो तो जो कुछ भी व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्ति को परिव्याप्त करती है वह सब मस्तिष्क की सर्जनात्मक क्षमतओं में मिलकर उसे और बढ़ा देती है।

यदि इसको औद्योगिक उत्पादन की भाषा में कहें तो कुछ बुद्धिकर्मी मनमौजी और तुनकमिजाज होते हैं। वे एक निश्चित मनोदशा में ही अपनी पूरी क्षमता से कार्य कर सकते हैं।

कुछ नाटककारों ने अपनी पूरी पटाकथा एक ही दिन में लिख डाली हैं। यह सब प्रवृत्ति पर निर्भर करता है।

इमरसन के निबंधों में उल्लिखित विचार हर प्रकार की परिस्थितियों में आते थे और उनके प्रेरक भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते थे। वे अर्धरात्रि में भी जग जाते थे और किसी सूत्र को लिखने बैठ जाते थे। वे क्रमानुसार नहीं सोच सकते थे। उनके विचार टुकड़ों में आते थे, वे उन्हें लिख लेते थे और बाद में उनको वर्गीकृत कर निबन्धों का स्वरूप देते थे।

वे जिस कार्य को करने में जुटे होते हैं उसके अतिरिक्त कुछ और सोच ही

नहीं सकते। उदाहरण के लिये तो खतरा इस बात का है कि एक बुद्धिकर्मी अपने कार्य का स्तर अपने बाजार के स्तर तक नीचे ले आता है। वह कोई एक कालजयी रचना करने के बजाय दर्जन भर सतही किताबें लिख डालता है।

हम कह सकते हैं कि प्रत्येक कालजयी कृति लेखक के जीवन रुधिर से लिखी जाती है। यह तथ्य सभी महान कार्यों पर लागू होता है चाहे वह पुस्तक लेखन हो चाहे कोई समुद्री जहाज हो या कि कारखाना। उसका सृजक, जिसे हम कहते है यह वह व्यक्ति है जिसने उस कार्य के लिये अपना तन-मन-धन सर्वस्व अर्पित कर दिया है। कार्य के समाप्त होते-होते वह स्वयं भी समाप्त हो जाता है।

किसी बुद्धिकर्मी के लिये सभी खतरों में, सम्भवतः सबसे बड़ा खतरा है किसी खराब, निम्नस्तरीय कार्य से संतुष्ट होना। जो लोग किसी न किसी रूप में लोगों को विचार बेचते हैं, विचारों के व्यापारी हैं, शीघ्र ही जान जाते हैं कि सामान्य जन दूसरे और तीसरे दर्जे के काम से ही संतुष्ट रहते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ भी ऐसा नहीं है जो इतने प्रभावी ढंग से आपकी मानसिक क्षमताओं को जागृत कर दे और आप संरचना के परमानन्द का स्वाद चख पायें।

विषयानुक्रमणिका

विषय		पृष्ठ संख्या
(1)	विश्व विज्ञानी गुरुवर	2
(2)	कनक गुरु पूजन/(अर्चना)	2
(3)	महा ज्ञानी ध्यानी कनक गुरु	3
(4)	शोध-बोध हेतु मेरा प्रयत्न	4
शोध-बोध गीताञ्जली		
(1)	स्वागतं स्व-शुद्धात्म स्वभाव	21
(2)	धर्म की आत्मकथा	25
(3)	सद्भाव से ही भावी निर्माण	32
(4)	मैं (कनक) ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि याचना से रहित क्यों ?	46
(5)	धर्मध्यान : द्रव्य-तत्त्व-पदार्थो का चिंतन	50
(6)	सातिशय पुण्य से पाप दूर व मोक्ष प्राप्ति	56
(7)	अज्ञानी मोही से परे मेरा आत्मविकास	66
(8)	उत्साहपूर्वक करते हैं पाप	82
(9)	8 मूलगुण व 12 व्रत युक्त श्रावक भी नहीं होता पूर्ण धार्मिक	105
(10)	मैं ही मेरा सर्वस्व, अन्य सभी परतत्त्व	116
(11)	ध्यान मेरे लिए परम कर्तव्य-(आत्मध्यानी मुनि ही यथार्थ से धर्मध्यानी)	124
(12)	मैं हूँ जल सबसे निराला(जल की आत्मकथा व आत्मव्यथा)	130
(13)	मैं हूँ अग्नि (अग्नि की आत्मकथा व आत्मव्यथा)	135
(14)	मैं हूँ वायु (वायु की आत्म कथा व आत्म व्यथा)	137
(15)	निस्पृहसन्त की साधना v/s मोही संत की प्रभावना	144

शुद्ध-बुद्ध आत्मबोध

स्वागतं स्व-शुद्धात्म स्वभाव

- आचार्य कनकनंदी

स्वागतं! स्वागतं! नवभाव स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! दिव्यभाव स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! सत्यभाव स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! साम्यभाव स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! क्रान्ति भाव स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! शान्ति भाव स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! आत्मश्रद्धा स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! आत्मप्रज्ञा स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! आत्मचर्या स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! आत्मशुद्धि स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! आत्मशक्ति स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! आत्मतृप्ति स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! क्षमाभाव स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! दया भाव स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! दान भाव स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! सेवा भाव स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! धैर्यभाव स्वागतम्
स्वागतं! स्वागतं! वीर्यभाव स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! शुभभाव स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! शुद्ध भाव स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! मोक्ष भाव स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! सर्वोदय स्वागतम्
स्वागतं! स्वागतं! अन्तोदय स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! आत्मोदय स्वागतम्।
स्वागतं! स्वागतं! कनक शुद्ध स्वभावम्।

ओबरी - 31.12.2017 (नववर्ष 2018 के पूर्व प्रातः 6:26)

इस साल बनाएं लाइफ का नया ब्लूप्रिंट

एक शिल्पकार बड़े मनोयोग से अपनी एक कृति को अंतिम रूप दे रहा था। तभी उसके शिल्प से प्रभावित एक प्रशंसक उसके पास आया और पूछा, 'आप टेढ़े-मेढ़े, भौंडे और बेडौल पत्थरों से इतनी खूबसूरत चीजें कैसे बना लेते हैं? शिल्पकार ने मुस्करा कर कहा, 'दोस्त, इन पत्थरों में खूबसूरती तो पहले से ही मौजूद होती है। मैं तो बस इनका अतिरिक्त अंश काट-छांट कर हटा देता हूँ।'

अगर आपका बीता साल आपकी अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं रहा और आप वाकई इस साल कुछ नया करना चाहते हैं तो आपको इस साल अपनी जिंदगी की डिजाइनिंग का काम करना चाहिए और एक नया ब्लू प्रिंट तैयार करना चाहिए, जिस पर काम करते हुए आप अपनी जिंदगी से फालतू और व्यर्थ चीजों को हटाते हुए इसे एक नया, प्रभावशाली और आकर्षक रूप दे सकें।

सोचें नहीं कर डाले

जिंदगी में कुछ सार्थक करने के लिए सिर्फ सोचना काफी नहीं है। आपको अपनी सोच और योजना को कार्यान्वित भी करना पड़ेगा। इसलिए दिन-रात सिर्फ सोचने में वक्त बर्बाद न करके कामों को उनके महत्व और प्राथमिकता के हिसाब से करते भी चलें। जब आप एक के बाद एक काम करते चलेंगे तो जल्द ही उपलब्धियां सामने नजर आने लगेंगी।

कठिन कामों पर पाए विजय

मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी के प्रोफेसर डेविक मिंडेल कहते हैं कि आप अपनी जिंदगी के उस क्षेत्र को पहचानें, जो आपको बेहद कठिन लगता हो और उस पर पूरी मेहनत से काम करें। शुरुआती हिचकोलों के बाद जल्दी ही आपका काम आसान होने लगेगा। एक बार में सिर्फ एक समस्या पर काम करें। अगर आप सभी मोर्चों को एक साथ खोल कर बैठ जाएंगे तो किसी में सफलता हासिल नहीं होगी।

चुनौतियो को मौका समझे

जिंदगी में आसानी से कुछ भी नहीं मिलता। चुनौतियां तो पग-पग पर आपके

सामने आएंगी ही लेकिन इनसे घबराकर पीछा छुड़ाने की बजाय इन्हें खुद की काबिलियत साबित करने का मौका समझें। सरोदवादक अमान अली खां कहते हैं,'चुनौतियों को स्वीकारें और अपनी ऊर्जा एकत्रित करके उन पर पिल पड़ें। उनसे पिंड छुड़ाने के बहाने बनाएंगे तो जिंदगी में बहुत पीछे रह जाएंगे। तो आज से हर चुनौती को एक अवसर मानना शुरु करें, जिंदगी संवर जाएगी। वैसे भी किसी ने कहा कि वह जिंदगी ही क्या, जिसमें चुनौतियां न हों। चुनौतियां आपको बेहतर इंसान बनाती है।

पूरा प्लान बनाएं

कारपोरेट गुरु अजीम जमाल कहते हैं कि हर डिजाइनिंग प्लान का एक निश्चित अंत भी होता है। अगर डिजाइन ठीक न हो तो फिर सब कुछ गड्डमड्ड होना तय है। इसलिए आप भी अपने जीवन का एक निश्चित मकसद तय करें। फिर इसे हासिल करने की योजना बनाएं और उस पर अमल करें। बाधाएं तो आएंगी लेकिन इन्हें अनुशासन और लगन के बूते पर पार करें। बीच से वापस लौटने की आदत आपको कहीं का न छोड़ेगी और बिना मंजिल सफर करने की आदत आपको सिर्फ दुख और हताशा ही देगी। सोच को सकारात्मक रखें और निर्णय समय से लेने की आदत डालें

बुरी आदतों से निजात पाएं

काम टालने, आलस्य, नशा और नकारात्मक लोगों की संगत से हर हाल में दूर रहें। जिंदगी से अनावश्यक लोगों, चीजें और बोझ छांट दीजिए। जैसे बुके बनाने के लिए फूलों से अतिरिक्त पत्ते,टहनिया, कांटते-छांटते हैं, तभी वह आकर्षक बन पाता है या जैसे उद्यान की साफ-सफाई न हो तो जंगल बन जाएगा, ठीक उसी प्रकार जिंदगी से फालतू और बोझिल चीजों को न हटाया जाए तो जिंदगी दुश्वारियों से भर जाएगी। इसलिए आपको नए साल में अपनी हर उस बुरी आदत से छुटकारा पाना है, जो आपके जिंदगी की दौड़ में पीछे धकेलती है।

बेंजामिन फ्रेंकलिन ने कहा है, नए साल को खूबसूरत और सार्थक बनाना है तो अपने दोषों व कमियों को दुश्मन समझकर उनसे युद्ध लड़िए, अपने पड़ोसियों के

साथ मधुर व्यवहार कीजिए और हर नए साल किसी अच्छे इंसान की तलाश कीजिए।

अपने प्रति विश्वसनीय बनें

'**डिजाइन** योअर लाइफ' के लेखक निक रिक्सन कहते हैं कि सबसे ज्यादा जरुरी यह है कि आप खुद के प्रति विश्वसनीय रहें। जिंदगी की डिजाइनिंग असल में यह चुनना है कि चीजों को आप किस तरह देखना चाहते हैं और किस तरह हासिल करना चाहते हैं। आपने देखा होगा कि इस दुनिया में जितनी चीजें बनाई गई हैं, उनके निर्माताओं का कॉन्सेप्ट बिल्कुल क्लीयर था कि उनकी बनाई चीजें कैसी दिखेंगी और वे उन्हें कैसे बना सकेंगे। बस इसी तरह हमें अपनी जिंदगी का डिजाइन बनाते वक्त सब कुछ पहले से जानना होगा और इस मामले में भी ईमानदार रहना होगा।

एक बड़ा,स्पष्ट लक्ष्य बनाएं

पूर्व राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम आजाद ने कहा था कि आगे बढ़ने के लिए जरुरी है खुली आंखों से सपने देखना और उसमें भी छोटे सपने देखना पाप है। इसलिए कोई बड़ा लक्ष्य बनाएं और उसे पूरा करने में जुट जाएं। यह लक्ष्य पर्सनल, प्रोफेशनल या एकेडमिक होने की खुशी भी मिलेगी। लेकिन आपका लक्ष्य व्यवहारिक होना चाहिए, वरना आपका हाल कुछ ऐसा होगा।

रोज मेरी सोच से आगे चली जाती है जिंदगी कितना भी तेज चलूं, फासला तय नहीं होता। **मंजरी शुक्ला**

हौसले रहें बुलंद

लाइफ कोच व मेटा फिजिशियन वारेन स्टैग कहते हैं, 'आप अपनी जिंदगी में वाकई बदलाव चाहते हैं तो अपनी क्षमताओं के प्रति संशकित न रहें। आपका हौसला व आत्मविश्वास बुलंद रहने पर ही आप आगे बढ़ सकेंगे अगर आप पूरे समर्पण और हौसले के साथ ब्लू प्रिंट पर काम करेंगे, तभी यह साकार हो सकेगा वरना एक फ्लॉप प्रोजेक्ट बन कर रह जाएगा। जिंदगी में हर दिन कुछ नया होता है, जिसे खुले दिल से स्वीकारें।

धर्म की आत्मकथा
(धर्म का पावन सत्य स्वरूप व विकृत असत्य रूप)

- आचार्य कनकनंदी

(चालः आत्मशक्ति .....)

मैं हूं धर्म सब से महान, सब से महान मेरा काम।
मेरे बिना न मिले, सांसारिक सुख से ले मोक्षधाम।।
मेरे अनेक पर्यायवाची नाम, वस्तु स्वभाव ब्रह्मादि धर्म।
आत्म विश्वास ज्ञान चारित्र व अहिंसा, सत्य अचौर्य अपरिग्रह।।(1)

जो-जो वस्तु के होते हैं शुद्ध स्वरूप वे ही मेरे होते सही रूप।
जो-जो वस्तु के होते, अशुद्ध रूप वे ही मेरे होते हैं मिथ्यारूप।।
यथा जीवों का स्वरूप है सच्चिदानन्द यहं ही जीवों का निजधर्म।
इस से विपरीत सभी अधर्म, राग-द्वेष मोह कामादि भाव।।2।।

समता शान्ति व शुचि उदारता, मेरा ही सही स्वरूप जान।
सेवा दान व परोपकार मैत्री प्रमोद कारून्य माध्यस्थ भाव।।
ईष्या घृणा व तृष्णा से शून्य, सन्तोष सहिष्णुता मेरा ही रूप।
भेदभाव व पक्षपात परे व्यापक समन्वय मेरा ही रूप।।3।।

नीति-नियम व सदाचार मर्यादा व अनुशासन स्वावलम्बन।
दबाव-प्रलोभन व भय रहित, सार्वभौम स्वतंत्रता भी मेरा नाम।।
आध्यात्मिक शुद्धि व आत्म उन्नति, आत्मानुभूति, भी मेरा नाम।
ध्यान-अध्ययन व तप-त्याग मेरी उपलब्धि हेतु होते साधन।।4।।

ऐसा ही पूजा-पाठ व जप-आराधना तीर्थयात्रादि भी होते साधन।
यदि ये सभी मेरी उपलब्धि हेतु न होते ये सभी न होते धार्मिक काम।।
मेरा दुरूपयोग करते दुष्ट मानव, जो राग-द्वेष मोह स्वार्थ सहित।
मेरे स्वरूप से विपरीत करते अन्याय अत्याचार से लेकर आतंकवाद।।5।।

मेरे नाम पर भी करते आक्रमण, युद्ध वैर-विरोध व हत्या तक।
भेद-भाव व ऊंचनीच, ईष्या, घृणा से लेकर जीव-बलि तक।।
जिससे स्व-पर को कष्ट मिले वे सभी नहीं होते मेरा स्वरूप।
जिससे स्व-पर को शान्ति मिले वे सभी होते हैं मेरा स्वरूप।।6।।

अन्तोदय से सर्वोदय व अभ्युत्थान से ले परिनिर्वाण तक।
मेरे कारण ही प्राप्त होते मेरे अभाव से मिले नरक-निगोद।।
आत्म(सत्य)विश्वास से मैं होता प्रारंभ परिनिर्वाण में मेरा सम्पूर्ण।
इससे विपरीत होता अधर्म मिथ्याविश्वास से ले संसार भ्रमण।।7।।

सर्वज्ञ वीतरागी हितोपदेश ही मेरा कर सकते सम्पूर्ण वर्णन।
स्व-पर-विश्व कल्याण हेतु 'कनक' ने किया मेरा संक्षिप्त वर्णन।।

ओबरी- 30.12.2017 प्रातः 05:39

संदर्भ :

हिंत करोति सर्वेषां, सुखं तस्मात्तदिष्यते।
धर्मादि त्रितयं तद्धि, सुखं वै प्राप्यते यतः।।15।। कनकनंदी

सम्पूर्ण जीव जगत के लिए सुख हितकर है। इसलिये सर्व जीव जगत सुख चाहते हैं। जिन-जिन उपायों से सुख प्राप्त होता है वे धर्म-दर्शन विज्ञान हैं।

देह सुखदं विज्ञानं, दर्शनं च मनः सुखम्।
सर्वेषां, सुखदो धर्मः, सर्वाधार नभःसमः।।16।। कनकनंदी

विज्ञान से शारीरिक सुख मिलता है, दर्शन से मानसिक सुख मिलता है, धर्म सब प्रकार सुख देने वाला है। जिस प्रकार आकाश सम्पूर्ण द्रव्यों के लिए आधार स्वरूप है उसी प्रकार धर्म सम्पूर्ण सुखों के लिए आधार स्वरूप हैं।

जीव का प्राकृतिक स्वभाव अनन्त सुख शान्तिमय है, अर्थात् प्रत्येक जीव मूल स्वरूप से ''सच्चिदानन्द स्वरूप'' है। इसलिए कीट-पतंग, पशु-पक्षी,गरीब-अमीर, ज्ञानी-अज्ञानी आदि प्रत्येक जीव सुख के लिये अत्यन्त उत्कंठित रहते हैं।

कोई भी दुःख नहीं चाहता है क्योंकि दुःख आत्मा का अप्राकृतिक रूप विकार धर्म है। सुख का उत्स स्वयं आत्मा होते हुए भी कर्म संयोग अवस्था में सुख का तिरोभाव हुआ है। सामान्यतः सुख एक प्रकार होते हुए भी निमित्त के कारण सुख अनेक प्रकार हैं। यथा-शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक। जब पूर्ण आध्यात्मिक सुख प्राप्त नहीं होता है तब वह जीव शरीरादि सुखों को स्वीकार करता है। शारीरिक सुख प्राप्त प्राप्त करने के लिए बाह्य साधनों की आवश्यकता है। भौतिक विज्ञान ने यान, वाहन, रेडियो, टी.वी., पंखा, कूलर आदि-आदि भौतिक साधनों से जीवों को सुख पहुँचाया है। तात्विक विचार, मनन-चिन्तन आदि से मन में एक प्रकार प्रशस्त प्रकाशमय भाव उत्पन्न होता है जिसके माध्यम से मानसिक सुख मिलता है। परन्तु धर्म से शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, इहलोक,परलोकादि सम्बन्धी सुख मिलता है।

समस्त सुखों का आधार धर्म

धर्मःसर्व सुखाकरो हितकरो धर्म बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिव सुखं धर्माय तस्मै नमः।।
धर्मान्नास्त्यपरः सहृदभवभृतां धर्मस्य मूलंःदया।
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिन हे धर्म! मां पालय।।

धर्म समस्त प्रकार के सुखों को एवं हितों को करने वाला है, धर्म से ही शाश्वतिक सुख प्राप्त होता है। धर्म को छोड़कर दुःखी संसारी जीवों का कोई भी बंधु-बाधव नहीं है। इसलिये हे सुख इच्छुक ज्ञानी जीव! धर्म का संचय करो। धर्म का मूल विश्व प्रेम है। मैं धर्म में अपने चित्त का समर्पण करता हूँ। हे सर्व सुख दातार! धर्म मेरा पालन करो।

धारणाद्धर्ममित्याहु धर्मो धारयते प्रजाः
यःस्याद्धारण संयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।।

जो धारण करता है उसे धर्म कहते हैं। धर्म सम्पूर्ण जीवजगत् का धारण,पोषण,रक्षण करता है। जिसमें धारण करने की शक्ति, सामर्थ्य और क्षमता हो उसे निश्चिय पूर्वक धर्म जानो।

यस्मादभ्युदयः पुंसां निःश्रेयस फलाश्रयः।

वदन्ति विदिताम्ना यास्तं धर्मं धर्मसूरयः।।(धर्म रत्नाकर)

''यस्मादभ्युदयः निःश्रेयस सुखं सः धर्म।।(हिन्दू धर्म)

जिससे शारीरिक, सांसारिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, इन्द्र, विद्याधर,चक्रवर्ती, तीर्थङ्कर, मनुष्य,पशु आदियों के सुख प्राप्त होता है उसको अभ्युदय सुख कहते हैं। आध्यात्मिक, अतीन्द्रिय, अभौतिक, शाश्वतिक, निराबाध, अविषय-जनित,स्वातन्त्रय मोक्ष सुख को निश्रेयस सुख कहते हैं। धर्म से उपरोक्त निश्रेयस एवं अभ्युदय सुख प्राप्त होता है।

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणम्।

संसारदुःखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे।।2।।रत्नकरण्ड

महान दार्शनिक, तत्ववेत्ता, तार्किकचुड़ामणि समन्तभद्र स्वामी प्रतिज्ञा करते है कि मैं उस समीचीन धर्म को कहूँगा जो धर्म दुःखों से संतप्त जीवों के कर्म को विध्वंस करके, समस्त दुःखों से उद्धार करके जीवों को शाश्वतिक अति उत्तम सुख में धारण कराता है। अर्थात दुःखों से पार करने वाले एवं उत्तम सुख में धारण करने वाले को धर्म कहते हैं।

धर्मो गुरुश्च मित्रं च धर्मः स्वामी च बान्धवः।

अनाथ वत्सलःसोऽयं स त्राता कारणं बिना।।

धर्म ही गुरु,मित्र,स्वामी, बांधव है तथा अनाथों का रक्षण करने वाला है। धर्म निःस्वार्थ भाव से स्वेच्छापूर्वक अकारणक रक्षक के समान सबकी रक्षा करता है।

पवित्री क्रियते येन येनैव घ्रियते जगत्।

नमस्तस्मै दयाद्राय धर्मकल्पाङ्घ्रिपाय वै।।

जो सम्पूर्ण विश्व को पवित्र करता है एवं धारण करता है, उस विश्व प्रेम से आर्द्र(ओत-प्रोत) धर्मरूपी कल्पवृक्ष के पवित्र चरण कमल में मेरा शतशः अभिनन्दन हो।

धर्म से किस प्रकार समस्त प्रकार का सुख मिलता है। इसी पुस्तक में आगे सन्दर्भ के अनुसार अनेक स्थलों में दिग्दर्शन किया जायेगा।

धर्मादि के अन्यथा प्रयोग से दुःख

मूढः स्वार्थी च मानी च, मोही जानति न त्रयम्।

अन्यथा ते प्रयुञ्जन्ति, तस्माद्त्रिदुःख कारणाम्।।17।। कनकनंदी

मूढ़, स्वार्थान्ध, अहंकारी, मोही जीव धर्म दर्शन विज्ञान को यथार्थ रूप से नहीं जानता है, उनका दुष्प्रयोग करता है जिससे तीनों दुःखदायी बन जाते हैं।

मिथ्या धर्म से हानि

तर्क दर्शनं विज्ञान हीनं राजा यथा परिषदः विहीनम्।

ते धर्म न हि मिथ्या कुवाद सर्वमनर्थवृक्षस्य बीजम्।।10।। कनकनंदी

तर्क दर्शन विज्ञान से रहित धर्म नहीं है परन्तु मिथ्या रुढ़िवाद है, जैसे राजा हितोपदेशी मंत्री आदि परिषद् से रहित होने पर देश के अहित के लिए होता है उसी प्रकार मिथ्या धर्म समस्त अनर्थ के लिए बीज स्वरूप है।

राजा यथार्थ से एक जन नायक, प्रजा पालक, नीति नियम का संरक्षक एवं प्रजा का रक्षक होता है। परन्तु जब राजा स्वार्थन्ध होकर मंत्री, पुरोहित, गुरुजन, पारिषदादिकों के हितोपदेश, सलाह,मन्त्रणादि नहीं सुनकर स्वार्थ सिद्धि के लिए प्रवृत्त होता है तब वह रक्षक न होकर भक्षक बन जाता है। इसी प्रकार जब धर्म, नीति, नियम,सदाचार,विनय, तर्क,दर्शन, विज्ञान से रहित हो जाता है तब वह धर्म जीवों के विकास के लिए कारण नहीं बनता है परन्तु विनाश के लिए समर्थ कारण बन जाता है।

यदि हम निरपेक्ष दृष्टि से विश्व इतिहास का सूक्ष्म अध्ययन करेंगे तब इसको इतिहास का प्रत्येक पृष्ट पुकार-पुकार कर कहेगा कि ''विश्व में अभी तक जो रक्तपात, युद्ध, विषाद, कलह, वैमनस्य, द्वेष पक्षपातादि हुआ है उसका बहुत कुछ श्रेय मिथ्याधर्म को है।'' धर्म के नाम पर यज्ञ में निरपराधी पशुओं की बलि, शोषण मिथ्यादंभ(अहम्), मिथ्यारुढि, सती दाह प्रथा, यहाँ तक कि यज्ञ में राजाओं की आहुति ये सब अवदान मिथ्या धर्म का है। मनुष्य समाज में विभिन्न सम्प्रदाय के कारण जो संकीर्ण मनोभाव, गुटबन्दी,भेदभाव व घृणा भाव है उसका मूल कारण कुधर्म(पाखण्ड धर्म) कहने पर कोई अतिशयोक्ति न होगी। इसलिए मनुष्य के नम्र पुजारी साम्यवाद के पुरकर्ता लेलिन कहते है कि-

[illegible]

धर्म की ओट में हुए अत्याचारों से व्यथित ही कहता है कि विश्व कल्याण के लिए धर्म की कोई आवश्यकता नहीं है। उसके प्रभाव में आए हुए व्यक्ति धर्म को उस अफीम की गोली के समान मानते हैं जिसे खाकर कोई अफीमची क्षण भर के लिए अपने में स्फूर्ति और शक्ति का अनुभव करता है। इसी प्रकार उनकी दृष्टि में धर्म भी कृत्रिम आनन्द अथवा विशिष्ट शान्ति प्रदान करता है।

उपरोक्त लेनिन के ही विचार को बहुत शताब्दी के पहले जैनाचार्य रविषेण जैन रामायण(पद्मपुराण) में पाखण्डियों को स्पष्ट रूप से ललकार हुए कहते हैं कि-

धर्मः शब्द मात्रेण बहुशः प्राणिनोऽधर्मः।
अधर्ममेव सेवन्ते विचार जड़ चेतसाः।।

अधिकांशतः विचार हीन अधर्म प्राणी धर्म शब्द को लेकर अधर्म ही सेवन करते हैं।

एक शान्ति प्रिय अंहिसावादी निस्पृह साधु श्री दिगम्बर जैनाचार्य रविषेण पखण्डियों की पाखण्ड क्रियाओं से जो सम्पूर्ण जीव जगत का अकल्याण, अनर्थ (अवनति) होता है उसका स्पष्ट रूप से अनुभव करके उसके प्रतिकार के लिए निर्भिक वीर सिंह के समान ललकार करके भर्त्सना करते हैं, क्योंकि मिथ्याधर्म से प्राणी जगत की जो क्षति और अवनति होती है वह क्षति अपूर्णनीय है। इसी प्रकार क्षति नहीं पहुँचे अतः पहले से प्राज्ञ व्यक्तियों को सतर्क रहना चाहिए। इस प्रकार आदि शंकराचार्य कहते हैं कि-

जटिलो मुण्डी लुंचित केशः कषायाम्बरः बहुकृतवेषः।
पश्यन्नपि न च पश्यति मूढः उदर निमित्तं बहुकृत वेषः।।24।।

जटा बढ़ाने वाले, सिर मुण्डन करने वाले, कषायाम्बरादि अनेक धार्मिक वेषों को धारण करने वाले मूढ़ लोक जो कि आत्म-धर्म से रहित होने के कारण आत्मा के सत्य धर्म को नहीं देखते हैं वे मूर्ख केवल उदर (पेट) पोषण के लिए अनेक प्रकार

बाह्य वेष को धारण करते हैं। वे केवल स्वार्थ सिद्धि के लिए, यश प्रतिष्ठा मान सम्मान के लिए, अर्थ शोषण के लिए बाह्य वेष बनाकर धर्मोपदेश करते हैं परन्तु अन्तरंग में बगुला भक्त होते हैं। जैसे कि वक पक्षी बाह्य में शुक्ल होता है एवं जलाशय में एक पैर पर खड़ा रहकर ध्यानी के समान ध्यान करता है परन्तु जब जलाशय के ऊपर मत्स्य आती है तब मछली को ओम स्वाहाः करता है। इसी प्रकार कुछ पाखण्डी साधु बाह्य से धार्मिक वेशभूषा धारण करते हैं और भोले प्राणियों को अपने चंगुल में फँसाने के लिए अनेक धार्मिक मायाजाल फैलाते हैं और संयोग मिलने पर वक पक्षी के समान प्राणियों के धन, जन, जीवन तक अपहरण कर लेते हैं। किसी नीतिकार ने कहा भी है-

परोपदेशे पांडित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम।
धर्मे स्वयमनुष्ठानं कस्याचित् महात्मनः।।

दूसरों को सदाचार का, धर्म का उपदेश देना सुलभ है किन्तु उसी उपदेशानुसार स्वयं आचरण करने वाले जगत् में बिरले ही कोई सज्जन हैं।

स्वार्थ सिद्धि के लिए धर्म के नाम पर जो अन्याय अत्याचार, हिंसा आदि करते हैं उनको वक्र(व्यंग्य) दृष्टि से परोक्ष रूप से भर्त्सना करते हुए वैदिक ऋषि कहते हैं कि-

यूपं छित्वा पशुना हत्वा, कृत्वा रुधिर कर्दमम्।
यद्येवं गम्मते स्वर्गं, नरकं केन गम्यते।।

यज्ञ काष्ट को छेदकर पशुओं की निर्मम भाव से हत्या कर जो भूमि को रक्त से कीचड़ करके स्वर्ग जाएगा तो और किस कर्म से नरक जाएगा? अर्थात नरक जाने का सर्वोत्तम मार्ग उपरोक्त कर्म ही है। उपरोक्त कर्म करके कोई भी स्वर्ग नहीं जा सकता।

धर्म के नाम से यज्ञ में बकरा, घोड़, भैंस,मनुष्य,राजा आदि की आहुति देना, दुर्गा, काली,चण्डी,मुण्डी, भूत-प्रेत आदियों को सन्तुष्ट करने के लिए उनके सामने बलि देना, वैदिक काल में यज्ञ में राष्ट्रीय एवं सामाजिक स्तर पर अत्यन्त प्रचार में था। परन्तु वर्तमान आधुनिक वैज्ञानिक सभ्य काल में भी उपरोक्त असभ्य दानवीय कुकृत्य स्वयं को सभ्य, तार्किक मानने वाले लोग अभी भी करते हैं।

सद्भाव से ही भावी निर्माण

वर्तमान में है सभी भाव; भूत-भविष्य में अभाव

(वैश्विक कार्य-कारण सिद्धांत, भाग्य पुरुषार्थ व वस्तु व्यवस्था)

(सद्भाव रूप होता वर्तमान काल में भूतकाल में होता प्रध्वं साभाव व भविष्यतकाल में होता प्रागभाव)

- आचार्य कनकनंदी

(चालः- क्या मिलिए....)

वर्तमान में ही होता सद्भाव/(द्रव्य)....भूत व भविष्य में अभाव।
भूतकाल में होता प्रध्वंसाभाव....भविष्यत काल में प्रागभाव।।
वर्तमान होता प्रवर्तमान....जो बीत गया वह भूतकाल।
जो आगे घटित होगा....उसे कहते भविष्यतकाल।।(1)

जो द्रव्य/(भाव,सत) है वर्तमान में .... उसका सद्भाव था भूत में।
किंतु भूत काल अभी नहीं सद्भाव .... उसका हो गया प्रध्वंसाभाव।।
वर्तमानकाल ही परिणमन करके .... बनेगा निश्चय से भविष्यतकाल।
किंतु भविष्यतकाल अभी नहीं है .... उसका अभी तो है प्रागभाव।।(2)

उत्पाद होने से द्रव्यों का होता व्यय .... दोनों में होता है ध्रौत्यमय।
सूक्ष्म दृष्टि से होते तीनों एक साथ .... किंतु पर्यायें न होती एक।।
भूतकाल पुनः न वापिस होगा ....न भविष्य अभी प्राप्त है।
वर्तमान ही सद्भाव है ....सत्भाव में ही होता परिणमन है।।(3)

भूत भविष्य दोनों अभाव होने से ....उसमें नहीं होता परिणमन।
अतएव वर्तमान सद्भाव होने से ....वर्तमान ही विद्यमान/(मूल्यवान)।।
परिणमन वर्तमान में होने से .... वर्तमान से ही भविष्यत निर्माण।
भावी निर्माता भाव होने से ....भाव से ही भविष्यत का निर्माण।।(4)

यह सिद्धांत हर द्रव्य/(भाव, सत्) में होता .... शुद्ध अथवा अशुद्ध।
शुद्ध में होता शुद्ध रूप में .... परिणमन अशुद्ध में अशुद्ध।।

संसारी जीवों में होता यथायोग्य.... अशुभ-शुभ-शुद्धमय।
द्रव्य-क्षेत्र-काल भावानुसार .... परिणमन होता वर्तमानकाल।। (5)

संसारी जीवों को अशुभ त्यागकर .... शुभ से शुद्ध बनना विधेय।
हर जीव स्वयं का ही कर्त्ता-धर्त्ता .... विधाता भोक्ता होना निश्चय।।
भूत से शिक्षा ले वर्तमान के पुरुषार्थ से .... भविष्य का निर्माण श्रेय।
भूत के कर्मबंध नाश करने हेतु .... वर्तमान में पुरुषार्थ विधेय।।(6)

यह वस्तु स्वरूप या विश्व व्यवस्था .... या कार्यकारण सिद्धांत।
संक्षेप में 'कनक' ने वर्णन किया .... प्राप्त करने हेतु शुद्ध स्वरूप।।(7)
ओबरी 21.12.2017 रात्रि 08.13

(इसके विशेष परिज्ञान हेतु कविकृत ''अनेकांत सिद्धांत'', ''भाग्य-पुरुषार्थ'', ''विश्व स्वभाव एवं विश्व की कार्यप्रणाली'' आदि का अध्ययन करें।)

सन्दर्भ :-

एगंतणिव्विसेसं एगंतविसेसियं च वयमाणो।
दव्वस्स पज्जवे हि दवियं णियत्तेइ।।(2) पू. 99

एकांती का कथन है कि सामान्य विशेष से रहित है और विशेष सामान्य से रहित है। अतः यह द्रव्य का पर्यायों से और पर्यायों को द्रव्य से अलग करता है, किन्तु द्रव्य ऐसा भिन्न-भिन्न नहीं है। जहां द्रव्य है, वहां पर्याय है और जहां पर्याय हैं, वहां द्रव्य है। वास्तव में दोनों एक दूसरे से अलग नहीं है।

पच्चुप्पण्णं भावं विगयभविस्सेहिं जं समण्णेइ।
एवं पडुच्चवयणं दव्वंतरणिस्सियं जं च।।(3)

जो वचन वर्तमान पर्याय का भूत तथा भविष्यत् पर्याय के साथ समन्वय करता है, वह ऊर्ध्वता सामान्य रूप वचन परमार्थ से सत्य है। यही सर्वज्ञवाणी है। इसके अतिरिक्त वाणी श्रद्धान योग्य नहीं है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न द्रव्यों में अवस्थित सामान्य अर्थात् तिर्यक् सामान्य का समन्वय करने वाले वचन प्रतीत्यवचन हैं।

दव्वं जहा परिणयं तहेव अत्थि त्ति तम्मि समयम्मि।

विगयभविस्सेहि उपज्जयेहिं भयणा विभयणा वा।।(4)

जिस समय जो द्रव्य पर्याय रूप परिणम गया है, वह द्रव्य उस समय उसी रूप में है। जो द्रव्य अपनी भूतकालिक भविष्यतकालीन तथा वर्तमान की पर्यायों को अपने में समेटे रहता है, जिनके साथ उसका अभेद है और भेद भी है। इस प्रकार का क्रम से होने वाली पर्यायों में तथा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में समन्वय करने वाला वचन युक्तियुक्त है और वही प्रतीत्य वचन है।

काल द्रव्य भी उत्पाद व्यय ध्रौव्यवाला है

उप्पादो पद्धंसो विज्जदि जदि जस्स एकसमयम्हि।

समयस्स सो वि समओ समभावसमवट्ठिदो हवदि।। (142)

[illegible]

आगे समय-संतान रूप उर्ध्व-प्रचय का अन्वयी रूप से आधारभूत काल द्रव्य को स्थापन करते हैं (जस्स समयस्स) समयरूप पर्याय को उत्पन्न करने वाले जिस कालाणु द्रव्य का (एक समयम्हि) एक वर्तमान समय में (जदि) जो (उप्पादो) उत्पाद तथा (पद्धंसो) नाश (विज्जदि) होता है (सो वि समओ) सो ही काल पदार्थ (सभाव समवट्ठि दो हवदि) अपने स्वभाव में भले प्रकार स्थिर रहता है।

कालाणु द्रव्य में पहली समय रूप पर्याय का नाश नयी समय रूप पर्याय का उत्पाद जिस वर्तमान समय में होता है, उसी समय इन दोनों उत्पाद और नाश का आधार रूप कालाणु रूप द्रव्य ध्रौव्य रहता है। इस तरह उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप त्रयात्मक स्वभावमई सत्ता रूप अस्तित्व इस काल द्रव्य का भले प्रकार सिद्ध है। भले प्रकार अवस्थित स्वभाव वाला समवस्थित है। जैसे एक हाथ की अंगुली को टेढ़ा करते हुए जिस वर्तमान क्षण में ही वक्र अवस्था का उत्पाद हुआ है, उसी ही क्षण में उसी ही अंगुली द्रव्य की पहली सीधीपने की पर्याय का नाश हुआ है, परन्तु इन दोनों की आधारभूत अंगुली द्रव्य ध्रौत्व है। इस तरह द्रव्य की सिद्धि होती है अथवा जिस किसी आत्म द्रव्य में अपने स्वभावमई सुख का जिस क्षण में उत्पाद है, उसी ही क्षण में उसके पूर्व अनुभव होने वाले आकुलता रूप दुःख पर्याय का नाश है, परन्तु इन दोनों के आधारभूत परमात्म द्रव्य का ध्रौव्य है। इस तरह द्रव्य की सिद्धि है

अथवा एक आत्म द्रव्य में जिस समय मोक्ष, पर्याय का उत्पाद है, उस ही समय रत्नत्रयमई मोक्षमार्ग रूप पर्याय का नाश है, परन्तु इन दोनों के आधारभूत परमात्म द्रव्य का ध्रौव्य है। इस तरह द्रव्य की सिद्धि है। तैसे ही जिस काल द्रव्य की जिस क्षण में वर्तमान समय रूप पर्याय का उत्पाद है,उसी काल द्रव्य की पूर्व समय की पर्याय का नाश है, परन्तु इन दोनों को आधार रूप अंगुली द्रव्य के स्थान में कालाणु द्रव्य का ध्रौव्य है। इस तरह काल द्रव्य सिद्ध है।

समीक्षा - जो द्रव्य होता हैं, उसमें अवश्य परिणमन भी होता है। बिना परिणमन किसी भी द्रव्य की सत्ता नहीं हो सकती है, क्योंकि 'उत्पादाव्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्' अर्थात जो सत् होता है, उसमें पूर्व पर्याय का नाश उत्तर पर्याय का उत्पाद और दोनों पर्याय के मध्य ध्रौव्य का होना द्रव्य का स्व-स्वभाव है और स्वभाव का कभी अभाव नहीं होता है। इसलिए काल एक द्रव्य होने के कारण उसमें भी उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य होना स्वाभाविक है। यह उत्पाद, व्यय,ध्रौव्य ही काल द्रव्य का ऊर्ध्वता प्रचय है।

सर्व समय में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य होते हैं

एगम्हि संति समये संभवठिदिणाससण्णिदा अट्ठा।

समयस्य सव्वकालं एस हि कालाणुसब्भावो।।(143)

[illegible]

आगे यह निश्चित करके हैं कि जैसे पूर्व में कहे प्रमाण एक वर्तमान समय में काल द्रव्य का (एकम्मि समये) एम समय में(समयस्स) काल द्रव्य का (संभवठिदिणासण्णिदा अट्ठा)उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वभाव(संति) है (एसहि) निश्चय करके ऐसा ही (कालाणु सब्भावों) कालाणु द्रव्य का स्वभाव(सव्वकालं) सदा काल रहता है।

जैसे पहले अंगुली द्रव्य आदि के दृष्टांत से एक समय में ही उत्पाद और व्यय का आधारभूत होने से एक विवक्षित वर्तमान समय में ही काल द्रव्य के उत्पाद व्यय ध्रौव्यपना स्थापित किया गया, तैसा ही सर्व समयों में जानने योग्य है। यहां यह तात्पर्य

निकालना चाहिये कि यद्यपि भूतकाल के अनन्त समयों में दुर्लभ और सब तरह से ग्रहण करने योग्य सिद्ध गति का काललब्धि रूप से बाहरी सहकारी कारण काल है तथापि निश्चय नय से अपने ही शुद्ध आत्मा को तत्त्व का सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान और चारित्र तथा सर्व पर द्रव्य की इच्छा का निरोधमइ लक्षण रूप तपश्चरण । इस तहर यह जो निश्चय चार प्रकार की आराधना है, यही उपादान कारण है। काल उपादान कारण नहीं है, इससे कालद्रव्य त्यागने योग्य है, यह भावार्थ है।

काल पदार्थ के सभी वृत्यंशों में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य होते हैं, क्योंकि (142वीं गाथा में जैसा सिद्ध हुआ है तद्नुसार) एक वृत्यंश में वे(उत्पाद व्यय ध्रौव्य) देखे जाते हैं और यह योग्य ही है, क्योंकि विशेषअस्तित्व की सामान्य अस्तित्व के बिना उत्पत्ति नहीं हो सकती। यही काल पदार्थ के सद्भाव की सिद्धि है।(क्योंकि) यदि विशेष और सामान्य अस्तित्व सिद्ध होते हैं, तो वे अस्तित्व के बिना किसी भी प्रकार से सिद्ध नहीं होते।

समीक्षा-आचार्य श्री ने इस गाथा में सिद्ध किया है, जो हेतु उत्पाद, व्यय,ध्रौव्य एक समय में होते हैं और यह उत्पाद ,व्यय,ध्रौव्य सर्व काल में होते हैं,इसलिये काल द्रव्य का सद्भाव है, क्योंकि द्रव्य भले स्व-उपादान कारण से परिणमन करता है तथापि बिना काल द्रव्य के परिणमन नहीं करता है, क्योंकि यह वस्तु स्वरूप है कि वस्तु पदार्थ उपादान कारण एवं योग्य समग्र बाह्य निमित्त कारणों के सद्भाव से और विरोधी कारण के अभाव होने पर कार्य करती है। इसके बिना न केवल निमित्त कारण से और न केवल उपादान कारण से कार्य हो सकता है। आ. समन्तभद्र स्वमी ने कहा भी है-

बाह्यो तरोपाधि समग्र तेयं कार्येषु ते द्रव्यगतःस्वभावः।
नैवान्यथामोक्ष विधिश्च पुंसा तेनाभिवन्द्यस्तवमृषिर्बुधानाम्।।(5)

हे भगवन्! घट आदि कार्यों में यह जो बाह्य और अभ्यान्तर कारणों की पूर्णता है, वह आपके मत में जीवादि द्रव्य गत स्वभाव है। अन्य प्रकार से घटादि की विधि ही नहीं, किन्तु मोक्षाभिलाषी पुरुषों के मोक्ष की विधी भी घटित नहीं होती है, इसीलिये परम ऋषियों से युक्त आप गणधरादि बुध जनों के वंदनीय हैं।

घटादि कार्यों की उत्पत्ति के लिये बहिरंग ओर अन्तरंग दोनों कारणों की पूर्णता

आवश्यक है, क्योंकि दण्ड, चक्र, चीवर आदि बहिरंग कारणों के बिना घट निर्माण के योग्य मिट्टी रूप अन्तरंग कारण के रहते हुए भी घट की उत्पत्ति नहीं हो सकती और दंड, चक्र,चीवर आदि बहिरंग कारणों के रहने पर भी घट निर्माण की योग्यता से रहित प्रचुर बालुका से युक्त मिट्टी के द्वारा उपादान कारण के अभाव में घट की उत्पत्ति नहीं हो सकती। जब निज की योग्यता रूप अन्तरंग उपादान कारण और योग्यता को विकसित करने में सहायक रूप बहिरंग निमित्त कारण दोनों की अनुकूलता होती है,तभी घटादि कार्यों की उत्पत्ति होती है। यही द्रव्य का स्वभाव है- यह द्रव्य का अर्थ क्रिया कारित्व है। सो यह स्वभाव उक्त विधि से ही प्रकट हो सकता है अन्य विधि से नहीं।' मोक्ष विधिश्च पुंसां' यहां चकार का अर्थ अपि है इसलिये यह अर्थ प्रकट होता है। यह विधि न केवल घटादि कार्यों के विषय में है, किन्तु मोक्षाभिलाषी पुरुषों के मोक्ष रूप कार्य के विषय में भी है। मोक्ष जीवद्रव्य की पर्याय है, इसका उपादान कारण सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र की पूर्णता से युक्त भव्यात्मा है तथा सहकारी कारण मुनिव्रत से युक्त कर्म भूमिज मनुष्य का शरीर आदि है। इन दोनों कारणों की अनुकूलता होने पर ही जीव द्रव्य में मोक्ष पर्याय रूप कार्य की उत्पत्ति होती है। मात्र उपादान से या मात्र निमित्त से कार्य की उत्पत्ति मानना संगत नहीं है। यह ठीक है कि निमित्त कार्य रूप परिणत नहीं होता, उपादान ही कार्यरूप परिणत होता है इसलिये उपादानोपादेय मात्र एक द्रव्य में ही बनता है, भिन्न द्रव्यों में नहीं, परन्तु इतने मात्र से निमित्त नैमित्तिक भाव का निषेध नहीं हो सकता, क्योंकि निमित्त नैमित्तिक भाव भिन्न द्रव्यों से बनता है। कर्मरूप पुदमल द्रव्य के निमित्त से जीव में रागादि विकारी भावों की उत्पत्ति होती है और जीव के रागादि विकारी भावों के निमित्त पुद्गल द्रव्य में कर्म रूप पर्याय की उत्पत्ति होती है तथा जीव और कर्म के संयोग से चतुर्गति रूप संसार चल रहा है। इस प्रत्यक्ष सिद्ध वस्तु तत्त्व का अपलाप नहीं किया जा सकता। हे भगवन्! चूंकि आपने इस द्रव्यगत स्वभाव का इस कार्यकारण भाव की व्यवस्था बतलाई है तथा आप ऋषि हैं, अनेक ऋषियों से युक्त निस्पृह साधु है, इसीलिये गणधरादिक बड़े-बड़े विद्वान आपको अभितः सब और मनसा वाचा कर्मणा वंदना करते हैं। कार्य कारण का विज्ञान होता है, क्योंकि बिना कारण कार्य नहीं होता है। जहां कार्य है, वहां कारण अवश्य होगा। जिस प्रकार जहां अमृतधारा

है, वहां अमृत धारा के कारण रूप अजवाइन सत्, पीपरमेंट और कपूर अवश्य होंगे। इसी प्रकार इस गाथा में सिद्ध किया गया है कि जो हेतु द्रव्य में सदाकाल परिणमन होता है और परिणमन के लिये बाह्य द्रव्य कालाणु चाहिये। इसलिये कालाणु का भी सद्भाव तीन काल में है। पंचास्तिकाय में कहा भी है-

सब्भावसभावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च।
परियट्टणसंभूदो कालो णियमेण पण्णत्तो।।(23) पृ. 84

द्रव्यों के नूतन अवस्था से जीर्ण होने को परिवर्तन या परिणमन कहते हैं, सो जिससे होता है वह कालाणु रूप द्रव्य है, ऐसा सर्वज्ञदेव ने कहा है। यहां शिष्य शंका करता है कि आपने यह पातनिका की थी इस पंचास्तिकाय के व्याख्यान को करते हुए निश्चय काल द्रव्य को कहने पर भी भाव से उसको ग्रहण कर लेना चाहिये सो किस तरह सिद्ध होता है? इस प्रश्न का समाधान आचार्य करते हैं कि ये पांचों जीवादि, अस्तिकाय परिणमन करते रहते हैं। परिणमन करने से परिणाम या पर्याय रूप कार्य होता है। सो कार्य कारण की अपेक्षा रखता है। यद्यपि उपादान शक्ति द्रव्यों में स्वयं परिणमने की है, परन्तु निमित्त कारण की आवश्यकता है सो द्रव्यों के परिणमन में निमित्त रूप कालाणु रूप द्रव्य काल है, इसी युक्ति की सामर्थ्य से काल द्रव्य झलकता है। शिष्य फिर यह पूर्व पक्ष कहता है कि पुद्गल परमाणु के गमन से उत्पन्न जो समय रूप सूक्ष्म सूक्ष्मकाल वही निश्चय काल कहा जाता है तथा घड़ी, घंटा आदि रूप स्थूलकाय सो व्यवहार काल कहा जाता है। सो व्यवहार काल घड़ी घंटे आदि के निमित्त कारण जल भरने, भोजन व वस्त्र व काष्ठ बनाने में जो पुरुषों के हाथों की व्यापार रूप क्रिया विशेष होती है, उसी से उत्पन्न होता है। द्रव्य काल से कोई व्यवहार काल नहीं होता है। इसी का आचार्य समाधान करते हैं कि यद्यपि समय रूप सूक्ष्म व्यवहार काल पुद्गल परमाणु की मंदगति से प्रगट होता है या जान पड़ता है तथा घड़ी, घंटा आदि रूप जो व्यवहार काल है, सो घटिका आदि के निमित्त कारण जल, बर्तन, वस्त्र आदि द्रव्य विशेष की क्रिया से जाना जाता है तथापि समय की घटिका आदि पर्याय रूप जो व्यवहार काल है, उस ही का उपादान कारण कालाणु रूप द्रव्य काल है। ऐसा मानना ही चाहिये, क्योंकि यह आगम का वचन है कि कार्य उपादान कारण के समान होता है। जैसे जो घट रूप कार्य कुंभर, चक्र, चीवर आदि बाहरी निमित्त

कारणों से बनता है, उसका उपादान कारण मिट्टी का पिण्ड है। अथवा जो पट या कपड़ा रूपा कार्य, कुविंद, तुरी, बेम, शलाका आदि बाहरी निमित्त कारणों से बनता है उसका उपादान कारण तागों का (धागों का) समूह है अथवा ईंधन अग्नि आदि बाहरी निमित्त कारणों से उत्पन्न जो भात रूप कार्य है, उसका उपादान कारण चावल या तंदुल है अथवा कर्मों के उदय के निमित्त से होने वाले नर-नारक आदि पर्याय रूप कार्य का उपादान कारण जीव है। इसी तरह वस्तुओं की क्रिया विशेष से प्रगट जो व्यवहार काल है, उसका उपादान कारण कालाणु रूप निश्चय काल द्रव्य है।

आचार्य जयसेन स्वामी ने अपनी टीका में कहा कि भले मोक्ष के लिये काल द्रव्य भी चाहिये जिसे काल लब्धि भी कहते हैं, परन्तु यह काल लब्धि मोक्ष के लिये उपादान कारण, समर्थ कारण नहीं हैं, क्योंकि काल बाह्य कारण में भी उदासीन बाह्य कारण है। उदासीन बाह्य कारण तो जब कार्य होता है, उस समय वह औदासीन्य रूप से निष्क्रिय रूप से सहायक बनता है। जिस प्रकार स्वयं गति करते हुए जीव एवं पुद्गल को गति करने में धर्म द्रव्य सहायक होता है, परन्तु बिना गति करते हुए जीव पुद्गल को सहायक या प्रेरक नहीं बनता है। इसी प्रकार काल द्रव्य के निमित्त से जब भव्य जीव सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्र तथा तप आराधना के बल पर मोक्ष प्राप्त करता है उस समय में उस मोक्ष रूप कार्य के लिये/परिणमन के लिये काल द्रव्य केवल उदासीन बाहरी सहकारी कारण बनता है। इसलिये आचार्य श्री ने टीका में कहा है कि चार आराधना ही मोक्ष उपादान कारण है। काल उपादान कारण नहीं है इसलिये काल त्यागने योग्य है। कुछ एकांती नियतवादी, कालवादी, भोगवादी, आत्मकल्याण के लिये प्रमादी जीव मानते हैं जो कुछ होगा वह सब काल लब्धि से ही हो जायेगा। उनका मत है-

कालवाद-

कालो सव्वं जणयदि, कालो सव्वं विणस्सदे भूदं।
जागत्ति हि सुत्तेसुवि, ण सक्कदे वंचिदुं कालो।।(88) गो. कर्म.

काल ही सबको उत्पन्न करता है, काल ही सबका नाश करता है, सोते हुए प्राणियों को काल ही जागता है, सो ऐसे काल को ठगने में कौन समर्थ हो सकता है? इस प्रकार काल से ही सब कार्य मानना कालवाद कहलाता है।

न कालव्यतिरेकेण गर्भबालयुवादिकम्।
यत्किंचिज्झायते लोके तदसौ कारणं किल।।(1)
किंच कालादृते नैव मुद्गपक्तिरपीक्ष्यते।
स्थाल्यादिसंनिधानेऽपिततः कालादसौ मता।।(2)
कालाभावे च गर्भादि सर्वं स्यादव्यवस्थया।
परेष्टहेतुसद्भावमात्रादेव तदुद्भवात्।।(3)
कालःपचति भूतानिकालःसंहरते प्रजाः।
कालःसप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः।।(4) षड्.द., पृ.16

इस संसार में गर्भाधान, बाल्यकाल, जवानी आदि जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह सब काल ही की सहायता से ही उत्पन्न होता है। काल के बिना नहीं, क्योंकि काल एक समर्थ कारण है। बटलोई, ईंधन आदि पाक की सामग्री मिल जाने पर भी जब तक उनमें काल अपनी सहायता नहीं करता, तब तक मूंग की दाल का परिपाक नहीं देखा जाता। अतः यह मानना ही होगा कि मूंग का परिपाक काल ने ही किया है।

यदि दूसरों के द्वारा माने गये हेतु के सद्भाव मात्र से ही कार्य हो और काल हो, और काल को कारण न माना जाय तो गर्भधान आदि की कोई व्यवस्था ही नहीं रहेगी। अर्थात् यदि ऋतु काल की कोई अपेक्षा ही नहीं है तो मात्र स्त्री पुरुष के संयोग से ही गर्भाधान होना चाहिये।

काल पृथ्वी और भूतों के परिणमन में सहायक होता है। काल ही प्रजा का संहार करता है, अर्थात, उन्हें एक अवस्था से दूसरी अवस्था में ले जाता है। सदा जागृत काल ही सुषुप्तिदशा में भी प्राणियों की रक्षा करता है। अतएव यह काल दुरतिक्रम है, अर्थात् उसका निराकरण अशक्य है।

नियतिवाद-

जत्तु जदा जेण जहा, जस्सयणियमेण होदि तत्तु तदा।
तेणतहा तस्स हवेइदि वादो णियदिवादो दु।।(882) गो. कर्म

जो जिस समय जिससे जैसे जिसको नियम से होता है, वह उस समय उससे वैसे उसके ही होता है, ऐसे नियम सभी वस्तु को मानना नियतिवाद कहलाता है।

नियर्तिर्नाम तत्त्वान्तरमस्ति यद्धशादेते भावाः सर्वेऽपि नियतेनैव रूपेण प्रादुर्भावमश्नुवते, नान्यथा। तथाहि यद्यदा यतो भवदि तत्तदा तत एव नियतेनैव रूपेण भवदुपलभ्यते, अन्यथा कार्यकारण व्यवस्था, प्रतिनियत रूपव्यवस्था च न भवेतु, निययामकाभावात्। तत एवं कार्यनैयत्यतःप्रतीयमानामेनां नियतिं को नाम प्रमाण पथकुशलो बाधितुं क्षमते। मा प्रापदन्यत्रापि प्रमाणपथव्याघात प्रसंग। तथा चोक्तम्।

नियति नाम का एक स्वतंत्र तत्व है। इस नियति से ही सभी पदार्थ नियत रूप से उत्पन्न होते हैं, अनियत रूप से नहीं। जो जिस समय जिससे उत्पन्न होता है, वह उस समय उससे नियत रूप से ही उत्पत्ति लाभ करता है। यदि नियत तत्त्व न हो तो संसार से कार्यकारण की व्यवस्था तथा पदार्थों को अपने निश्चित स्वरूप की व्यवस्था ही उठ जायेगी। इस तरह जब कार्यों की नियत अवस्था ही इस नियति तत्व के अस्तित्व से इंकार कर सकता है। यदि प्रतीति सिद्ध वस्तु का एक जगह लोप किया जाता है, तो संसार से प्रमाण मार्ग ही उठ जायेगा। और कहा भी है-

नियतनैव रूपेण सर्वे भावा भवन्ति यत्।
ततो नियतिजा ह्येते तत्सवरूपानुवेधतः।।(1)
यद्यदैव यतो याक्तत्तदैव ततस्तथा।
नियतं जायते न्यायात् क एनां बाधितुं क्षमः।। शा.चा.श्लो.(173,174)

''चूंकि संसार के सभी पदार्थ अपने-अपने नियत स्वरूप से उत्पन्न होते हैं, अतः यह ज्ञान हो जाता है कि ये सब नियति से उत्पन्न हुये हैं। यह समस्त चराचर जगत् नियति तत्त्व से गुंथा हुआ है। उससे तादात्म्य को प्राप्त होकर नियतिमय हो रहा है।''

''जिसे जिस समय जिससे जिस रूप में होना है, वह उससे उसी समय उसी रूप में उत्पन्न होता है। इस तरह अबाधित प्रमाण से प्रसिद्ध इस नियति के स्वरूप को कौन बाध दे सकता है? यह सर्वतः निर्बाध है।''

परन्तु उपर्युक्त कालवाद या नियतवाद एकांत होने से मिथ्या है, क्योंकि वस्तुस्वरूप अनेकांतात्मक है। अनेकांत से ही कार्य होता है, एकांत से कार्य नहीं होता है। कार्य के लिये जो मुख्य कारण है, वे पाचं प्रकार के हैं। इन पांचो कारणों के सम्यक् समवाय से ही कार्य होता है, अन्यथा नहीं। सिद्धसेन दिवाकर ने भी कहा है-

कालो सहाव णियई पुव्वकयं पुरिस कारणेगंता।
मिच्छत्तं ते चेव उसमासओ होंति सम्मत्तं।।(53) स.सू.अ.3

(1) काल(2) स्वभाव (3) नियति (4) पूर्वकृत (कर्म, दैव)(5) पुरुषार्थ को पृथक्-पृथक् कार्य की उत्पत्ति में कारण मानना असम्यक् है। कार्य की उत्पत्ति में सापेक्ष रूप से समवाय से पांचों ही कारणों को मानना सम्यक् है। इस सिद्धान्त का स्पष्टीकरण करने के लिये निम्न उदाहरण प्रस्तुत करता हूं-

माली बाग में नारियल का बीज बोता है, योग्य पानी और खाद देता है सुरक्षा के लिये बाड़ बनाता है तथा औषधि का भी उपचार करता है। कुछ महीनो(5-6 महीनों) के बाद बीज से अंकुर होता है। कुछ वर्षो के बाद (5-6 वर्षों) नारियल का फल भी आने लगता हैं।

क्या नारियल के बीजों को बोते ही अंकुर होकर, फल आने लगता है ? कदापि नहीं। जब तक योग्य काल नहीं होगा, तब तक अंकुर होना संभव नहीं है। अतएव अंकुर तथा फल आने योग्य कार्य के लिये 'काल' रूपी कारण की नितान्त आवश्यकता है। इसी अपेक्षा से जो कालवादी कहते हैं कि काल ही सबका नाश करता है, काल ही सोते हुए प्राणी को जागता है। काल ही जन्म, जरा, मरण का कर्त्ता है, यह सत्य है।

नारियल के बीज से नारियल का ही अंकुर होता है तथा नारियल का ही फल आता है, परन्तु नारियल के बीज से आम का पेड़ या आम का फल उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि नारियल के बीज से नारियल का ही अंकुर एवं नारियल के पेड़ से नारियल का आना उसका स्वभाव है। इस प्रकार अग्नि का स्वभाव उष्ण, जीव का स्वभाव चैतन्य, अजीब का स्वभाव अचेतन है। इसी कारण स्वभाव को कोई भी, कभी भी, किसी भी शक्ति का प्रयोग कर के परिवर्तन नहीं कर सकता। इस अपेक्षा से स्वभाव वादी जो कहते हैं, काटे की तीक्ष्णता, पक्षियों में जो विभिन्नता है- वह स्वभाव से है, कहना सत्य है।

नारियल के बीज को सीधा उल्टा कैसे भी रोपण करने पर अंकुर नियम से जमीन के ऊपर ही आयेगा तथा जड़ नियम से जमीन के भीतर ही जायेगी। नियति (नियम) से नारियल के फूल से ही नारियल का फल आयेगा। नारियल के फल के

अंदर ही पानी रहेगा तथा नरेठी (कड़ा भाग) के ऊपर नहीं रहेगा।

इसी प्रकार सूर्य नियति से पूर्व में सुबह उदय होकर शाम को पश्चिम में अस्त होता है। कभी भी सूर्य मध्याह्न में, दक्षिण में होकर अर्धरात्रि को उत्तर दिग् में अस्त नहीं होगा।

भूज्यमान आयु कर्म नियम से पूर्ण रूप से नष्ट होने पर मरण होगा, उसके पहले कभी भी मरण नहीं हो सकता है। इस अपेक्षा नियतिवादी जो कहते हैं कि, ''जो, जिस समय, जिससे जैसे, जिसको नियम से होता है, वह उस समय, उससे, वैसे उसको ही होता है'' कहना सत्य है।

माली जितने नारियल के बीज बोता है, सभी बीज अंकुरित हों, ऐसा कोई नियम नहीं है। कुछ अंकुरित होने के बाद सूख भी जाते हैं तथा कुछ पेड़ों में फल भी आते हैं अथवा कुछ में नहीं। कभी अधिक फल आते हैं, तथा कभी कम आते हैं, कभी फल सड़ गल भी जाते हैं। समीप के बगीचे में अधिक फल आते हैं तथा उसके पास के बगीचे में अच्छे फल नहीं आते, ऐसा क्यों? इसका कारण उस बगीचे के मालिक का पूर्वकृत पुण्य एवं पाप का फल है। इसी प्रकार संसारी जीवों को जो अवांछित सुख-दुःख मिलते हैं, वे सर्व पूर्वोपार्जित पुण्य पाप के फल हैं। इस अपेक्षा से जो दैववादी मानते हैं कि प्रत्येक कार्य दैव या पूर्वकृत् कर्म से होता है, मानना सत्य है।

यदि माली योग्य रीति से नारियल के बीज को रोपण नहीं करेगा, योग्य जल, खाद, प्रकाश से सुरक्षा नहीं करेगा, तब भी बीज से अंकुर, अंकुर से पेड़ तथा पेड़ से फल नहीं आयेगा। यदि नारियल के बीज को निर्वात स्थान में रखकर योग्य जल, वायु, प्रकाश से वंचित रखा जायेगा, तो क्या उस बीज से अंकुर, अंकुर से वृक्ष, वृक्ष से फल उत्पन्न हो सकता है ? कदापि नहीं। इसी प्रकार सामने रखी हुई भोजन की थाली से जब तक पुरुषार्थ करके भोजन को उठाकर मुख में डालकर नहीं खाते हैं, तब तक क्या पेट भर जायेगा? कभी नहीं भरेगा। इसी प्रकार चलना, उठना, बैठना, व्यापार करना, कृषि वाणिज्य, शिल्प कार्य करना सब पुरुषार्थ से होता है। दैव (पूर्वकृत पुण्यपाप) का निर्माण भी पुरुषार्थ से ही होता है, प्रत्येक कार्य सम्पादन करने के लिए पुरुषार्थ का योगदान अनिवार्य है। विश्व का सर्वश्रेष्ठ एवं ज्येष्ठ कार्य मोक्ष के

लिये तो पुरुषार्थ का योगदान सबसे महत्वपूर्ण है, क्योंकि रत्नत्रय रूपी पुरुषार्थ के बिना मोक्षरूपी कार्य का सम्पादन करना दुरूह नहीं, असंभव है।

इसी प्रकार काल आदि कार्य सम्पादन के लिये कारण होते हुए भी पूर्ण कारण नहीं है, परन्तु आंशिक कारण है। आशिंक कारण मानना सत्य होते हुए भी आंशिक कारण को ही पूर्ण कारण मान लेना ही असत्य है तथा कार्य सम्पादन के लिए काल का योगदान होते हुए भी केवल काल स्वतंत्र रूप से स्वभाव, नियति, पूर्वकृत(कर्म) पुरुषार्थ के बिना सहायता से कार्य नहीं कर सकता है। इसलिए स्वतंत्र रूप से काल कार्य सम्पादन के लिए अकिंचित्कर है। अन्य एक दृष्टिकोण से काल एक बाह्य निमित्त कारण है। केवल एक बाह्य निमित्त कारण अन्य सहकारी कारण तथा उपादान कारण के बिना कैसे कार्य सम्पादन कर सकता है, क्योंकि कार्य सम्पादन के लिए योग्य अन्तरंग एवं बाह्य निमित्त कारण की आवश्यकता होती है। एक भी कारण के अभाव से कार्य सम्पादन नहीं होता है। यह अखण्डित सिद्धान्त है। इसी प्रकार स्वभाव, नियति, पूर्वकृत पुरुषार्थ के लिये जान लेना चाहिए।

यदि काल ही सम्पूर्ण कार्या को करता है तब एक ही समय में विश्व के सम्पूर्ण कार्य हो जाने चाहिए। द्वितीयादि समय के लिये कोई भी कार्य अवशेष नहीं रहना चाहिये क्योंकि एक ही काल संपूर्ण कार्यों को करने के लिए समर्थ कारण होने पर अन्य कारणों की अपेक्षा नहीं रखता है और समर्थ कारण होने पर कार्य होने में देरी नहीं होती है। परन्तु आगम, अनुमान, प्रत्यक्ष अनुभव से सिद्ध होता है कि विश्व के सम्पूर्ण कार्य एक समय से निरवशेष नहीं होते हैं, इससे सिद्ध होता है कि काल ही सम्पूर्ण कार्यों के लिए एकमात्र अद्वितीय जनक नहीं हैं।

स्वभाव भी कार्य सम्पादन के लिए एक कारण होने के कारण कारणांश है, परन्तु पूर्ण कारण नहीं है। आंशिक कारण मानना सत्य होते हुए पूर्ण कारण मानना असत्य है। सुवर्ण पाषाण में स्वभावतः सुवर्ण होते हुए भी जब तक उस पाषाण को अग्नि आदि के माध्यम से तपाकर, गलाकार, ताड़ना घर्षण आदि के माध्यम से शुद्ध नहीं किया जाता है तब तक स्वभाव का व्यक्तिकरण नहीं होता है। भव्य जीव में सिद्ध होने का स्वभाव होने पर भी जब तक योग्य काललब्धि, व्यवहार-निश्चय,रत्नत्रय आदि का योगदान नहीं होता है, तब तक सिद्ध स्वभाव का व्यक्तिकरण नहीं होता है।

कांटा में तीक्ष्ण तथा अग्नि में उष्णता, नीम में कडुवापन, जीव में जो भेद-प्रभेद पाया जाता है, वह भी निष्कारण स्वभाव नहीं है। उसका कारण पूर्वोपार्जित कर्म ही है। इसलिए केवल स्वभाव को ही सर्वेसर्वा माना जाये तो वह भी असत्य की कोटि में आ जाता है।

जो जिस समय, जिससे, जैसे, जिसको नियम से होता है वह उस समय, उसमें वैसे उसको ही होता है, ऐसा मानना सापेक्ष दृष्टि से कथंचित् सत्य होते हुए भी निरपेक्ष दृष्टि से मानना मिथ्या है, क्योंकि संसारी जीवों को जो सुख-दुःख, जन्म-मरण, लाभ-अलाभ प्राप्त होता है, उसमें भी पूर्वकृत पुण्य-पाप तथा काल आदि का योगदान रहता है। परन्तु नियतिवाद निरपेक्ष नियति को स्वीकार करता है। सूत्रकृतांग सूत्र में नियतिवाद का इस प्रकार कथन पाया जाता है-

आधायं पूण ऐगिसिं उववन्ना पुणे जिया।
वेदयंविसुहंदुक्खं अदुवा लुधंति ठाणओ।।(1)(द्वितीय अध्याय)

पुनः किन्ही मतवादियों का कहना है कि (संसार में) सभी जीव पृथक्-पृथक् है, यह युक्ति से सिद्ध होता है तथा वे (जीव पृथक्-पृथक् ही) सुख-दुख भोगते हैं अथवा अपने स्थान से अन्यत्र जाते हैं, अर्थात् एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाते हैं।

न तं सयकंडं दुक्खं कओ अन्नकड चणं।
सुहंवा जइ वा दुक्खं सेहिय वा असेहियं।।(2)
न समं कडं ण अन्नेहि वेदयन्ति पुठो जिया।
संगतियं तं तहा तेसिं इहमेगोसिमाहियं।।(3)

वह दुःख (जब) स्वयं द्वारा किया हुआ नहीं है, तो दूसरे का किया हुआ भी कैसे हो सकता है ? वह सुख या दुःख चाहे सिद्ध से उत्पन्न किया हुआ हो अथवा सिद्धि के अभाव से उत्पन्न हुआ हो, जिसे जीव पृथक्-पृथक् तो भोगते है, वह न तो स्वयं का किया हुआ है और न दूसरे के द्वारा किया हुआ है, उनका वह (सुख या दुःख) सांगतिकि-नियतिकृत् है। ऐसा इस दार्शनिक जगत् में किन्हीं (नियतवादियों) का कथन है।

गोम्मट्टसार कर्मकाण्ड में एकांतकाल वाद एकांत नियतवाद को भी मिथ्या कहा

गया है। यथा-

कालो सव्वं जणयदि कालो सव्वं विणस्सदे भूदं।

जागत्ति हि सुत्ते सुविण सक्कदे वंचिदुं कालो।।(879) पृ. 251।

काल ही सबको उत्पन्न करता है और काल ही सबका नाश करता है, सोते हुए प्राणियों में काल ही जागता है। ऐसे काल के ठगने को कौन समर्थ हो सकता है। इस प्रकार काल से ही सबको मानना, यह कालवाद का अर्थ है।

जत्तु जदा जेण जहा जस्स यणियमेण होदितत्तु तदा।

तेण तहा तस्स हवे इदि वादो णियदिवादो दु।।(882)

जो जिस समय जिससे जैसे जिसके नियम से होता है, वह उस समय उससे तैसे उसके ही होता है। ऐसा नियम से ही सब वस्तुओं को मानना उसे नियतिवाद कहते हैं।

मैं (कनक) ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि याचना से रहित क्यों? इन्द्र से वन्दित चक्री से पूजीत जिनलिंग से 'कनक' तू याचना न करो!

- आचार्य कनकनंदी

(चाल :- सायोनारा...., हे गुरुवर धन्य हो तुम ....)

कनक! तू काहे साधु बना?
आत्मा से परमात्मा बनने, हेतु तू श्रमण बना। (स्थायी)

श्रद्धा-प्रज्ञा-ज्ञान-वैराग्य,युक्त तू सन्यासी बना,
संसार-शरीर-भोग से परे तू आत्महित हेतु बना।।(1)

तू तो सच्चिदानन्द बनने हेतु यह स्वरूप धरा।
द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित हेतु, तू निग्रन्थ रूप धरा।। (2)

पंचमहाव्रत पालने हेतु, तूने त्यागा वस्त्र तक।
केशलोंच करते (हो) पैदल चलते (हो) करसे आहार तक।।(3)

याचना रहित आहार लेते हो, वह भी नवधाभक्तियुक्त,
ऐसी अवस्था में ख्यातिपूजालाभ हेतु, न करो याचना कदाचित्।।(4)

राजा महाराजा व चक्री तीर्थंकर भी, त्यागते राज्य वैभव।
मन्दिर मूर्ति (के) स्वामीत्व त्यागते, तथाहि पारिवारिक/स्वामित्व (5)

राजा-प्रजा व भाई-बन्धु-कुटुम्ब, तथाहि शत्रु व मित्र।
सामाजिक बन्धन व संकीर्णता, परे करते आत्मा का ध्यान।।(6)

तू भी उनका अनुयायी होकर न करो उनसे विपरीत।
बाह्य में निर्ग्रन्थ किन्तु भाव-व्यवहार में न करो विपरीत।।(7)

केवल बाह्य-तप-त्याग करके, न चाहो ख्याति पूजा लाभ।
सर्प के समान कांचली त्यागकर, न करो तू विष दंश।।(8)

बाह्य कष्ट सहन तो समता-शान्ति/(निस्पृहता)बिन करते नारकी-तिर्यंच।
वन्दी से लेकर कंगाल-भिखरी व दास करते कष्ट सहन।।(9)।

शारीरिक दण्ड व ढोंग-पाखण्ड व, आडम्बर से रहो दूर।
इससे अन्तरंग प्रभावना सह, होती बाह्य प्रभावना प्रचुर।।(10)

चक्रकर्ती को यथा याचना न शोभनीय उनसे भी तू बढ़कर।
ज्ञानके विनिमय(विक्रय) से प्रसिद्धि (सम्पत्ति), चाहना यह भी है पापकर।।(11)
गृहस्थ से अधिक होगा पापबन्ध, यदि चाहोगे सत्ता-सम्पत्ति।
ईर्ष्याघृणातृष्णा वैर-विरोध, निन्दा त्याग से करो आत्मसिद्धि।। (12)

पर प्रतिस्पर्द्धा-नकल त्यागकर, आत्मा से करो आत्मा का विकास।
आत्मोपलब्धि है परम उपलब्धि, 'कनक' करो तू आत्म विश्वास।।(13)

इन्द्रों से वन्दित चक्रवर्ती से पूजीत, पाकर जिनेन्द्रलिंग।
'आत्मगौरव' व 'सोहं' भाव 'अहं' भाव हेतु 'कनक' करो प्रयत्न।।
ओबरी 24.12.2017 मध्याह्न 1.35

(यह कविता नितिन (सिपुर), मणिभद्र, दीपेश, मयंक,भूपेश, मधोक (चितरी) आदि के कारण बनी।)

संदर्भ -

मोह रागद्वेष वाला श्रमण नहीं

मुज्झदि वा रज्जदि वा दुस्सदि वा दव्वमण्णमासेज्ज।

जदि समणो अण्णाणी बज्झदि कम्मेहिं विविहेहिं।।(243) प्र.सार

(जदि) यदि(समणो) कोई साधु(अण्णं दव्वं आसेज्ज) अपने से किसी अन्य द्रव्य को ग्रहण कर (मुज्झदि वा) उसमें मोहित हो जाता है (रज्जदि वा) अथवा उसमें रागी होता है (दुस्सदि वा) अथवा उसमें द्वेष करता है(अण्णाणी) तो वह साधु अज्ञानी है, इसलिए (विविहेहिं कम्मेहिं) नाना प्रकार कर्मों से (बज्झेदि) बंधता है।

जो निर्विकार स्वयंवेदन ज्ञान से ज्ञान से एकाग्र होकर अपने आत्मा को नहीं अनुभव करता है उसका चित्त बाहर के पदार्थों में जाता है तब चिन्दानन्दमई एक अपने आत्मा के निज स्वभाव से च्युत हो जाता है फिर राग-द्वेष-मोह भावों से परिणमन करता हुआ नाना प्रकार कर्मों को बाँधता है। इस कारण मोक्षाथी पुरुषों को चाहिए कि एकाग्रता के द्वारा अपने आत्म स्वरूप की भावना करे। यह तात्पर्य है।

समीक्षा-अभी तक अनेक प्रकरण में यह निश्चित किया गया है जो किसी से भी प्रभावित न होकर स्व-आत्म स्वरूप में स्थित रहता है वह ही श्रमण है। इससे सिद्ध होता है कि राग-द्वेषादि विषम भावों से युक्त होता है वह श्रमण नहीं है। समता में रहने से यदि कर्म नहीं बंधता है तो विषमता उसके विपरीत भाव होने के कारण विषमता से अवश्य कर्म बंधेगा। इस प्रकार समता एवं विषमता के गुण-दोष जानकर समता का ही अवलंबन लेना चाहिए। परमात्म प्रकाश में कहा भी है-

जावँइ णाणिउ उवसमइ तामइ संजदु होइ।

होइ कसायहँ वसि गयउ जीउ असंजदु सो।।(गा. 41)

जिस समय ज्ञानी जीव शांतभाव को धारण करता है, उस समय संयमी होता है तथा जब क्रोधादि कषायों के अधीन हुआ वहीं जीव असंयमी होता है।

चेल्ला-चेल्ली पुत्थव्यहिं तूसइ मूढु णिभंतु।

एयहिं लज्जइ णणियउ बंधहँ हेउ मुणंतु।। (गा. 88)

अज्ञानीजन चेला-चेली पुस्तकादिक से हर्षित होता है, इसमें कुछ संदेह नहीं है, और ज्ञानी जन इन बाह्य पदार्थों से शर्माता हैं, क्योंकि इन सबो को बंध का कारण जानता है।

चट्टहिँ पट्टहिँ कुँडियाहिँ चेल्ला चेल्लियएहिँ।

मोहु जणेविणु मुणिवरहँ उप्पहि पाडिय तेहीँ।।(89)

पिच्छी, कमंडल पुस्तक और मुनि श्रावक रूप चेला, अर्जिका श्रविका इत्यादि चेली-ये संघ मुनिवरों को मोह उत्पन्न कराके वे उन्मार्ग में (खोटे मार्ग में) डाल देते हैं।

जिस किसी ने जिनवर का भेष धारण करके भस्म से सिर के केशलोंच किये, लेकिन सब परिग्रह नहीं छोड़े, उसने अपनी आत्मा को ही ठग लिया।

जे जिण लिंगु धरेवि मुणि इठ्ट-परिग्गह लेंति।

छद्दि करेविणु ते जि जिय सा पुणु छद्दि गिलंति।।(91)

जो मुनि जिनलिंग को ग्रहण कर फिर भी इच्छित परिग्रहों को ग्रहण करते हैं, हे जीव, वे ही वमन करके फिर उस वमन को पीछे निगलते हैं।

लालहँ कित्तिहि कारणिण जे सिव-संगु चयंति।

खीला-लग्गिवि ते वि मुणि देउलु देउ डहंति।।(92)

जो कोई लाभ और कीर्ति के कारण परमात्मा के ध्यान को छोड़ देते हैं, वे ही मुनि लोहे के कीले के लिए अर्थात् किले के समान असार इन्द्रिय सुख के निमित्त मुनि पद योग्य शरीर रूपी देवस्थान को तथा आत्मा देव को भव की आताप से भस्म कर देते हैं।

अप्पउ मण्णइ जो जि मुणि गरुयउ गंथहि तत्थु।

सो परमत्थे जिणु भणइ णवि बुज्झइ परमत्थु।।(93)

जो मुनि बाह्य परिग्रह से अपने को महंत (बड़ा) मानता है, अर्थात् परिग्रह से ही गौरव जानता है, निश्चय से वही पुरुष वास्तव में परमार्थ को नहीं जानता, ऐसा जिनेश्वर देव कहते हैं।

जोइय णेहु परिच्चियहि णेहु ण भल्लउ होइ।

णेहासत्तउ सयलु जगु दुक्खु संहतउ जोइ।।(115)

हे योगी! रागादि सहित वीतराग परमात्म पदार्थ के ध्यान में ठहरकर ज्ञान का

वैरी स्नेह (प्रेम) को छोड़, क्योंकि स्नेह अच्छा नहीं है, स्नेह में लगा हुआ समस्त संसारी जीव अनेक प्रकार शरीर और मन के दुःख सह रहे हैं, उनको तू देख। ये संसारी जीव स्नेह रहित शुद्धात्म तत्त्व की भावना से रहित है, इसलिए नाना प्रकार के दुःख भोगते हैं। दुःख का मूल एक देहादिक का स्नेह ही है।

जैसे तिलों का समूह स्नेह (चिकनाई) के संबंध से जल से भीगना, पैरों से खुँदना, घानी में बार-बार पिलने का दुःख सहता है, उसे देखो।

मोक्खु जि साहिउ जिणवरहिं छंडिवि बहु-विहु रज्जु।
भिक्ख भरोडा जीव तुहुँ करहि ण अप्पउ कज्जु।।(118)

जिनेश्वर देव ने अनेक प्रकार का राज्य का वैभव छोड़कर मोक्ष को ही साधन किया, परन्तु हे जीव, भिक्षा से भोजन करने वाला तू अपने आत्मा का कल्याण भी नहीं करता।

जियु अणु-मित्तु वि दुक्खड़ा सहण ण सक्कहि जोइ।
चउ-गइ दुक्खहँ कारणइँ कम्मई कुणहि किं तोइ।।(120)

हे मूढ़जीव! तू परमाणु मात्र (थोड़े) भी दुःख सहने को समर्थ नहीं है, देख तो फिर चार गतियों के दुःख के कारण जो कर्म है, उनको क्यों करता है।

धर्मध्यान द्रव्य-तत्त्व-पदार्थों का चिंतन

(उत्तम क्षमादि दश धर्म, पंचपरमेष्ठी, आत्मचिंतन, आज्ञा-अपाय-उपाय-संस्थान का चिंतन व श्रावक मुनि धर्म चिंतन पालन : धर्मध्यान)

- आचार्य कनकनंदी

(चालः- तुम दिल की धड़कन ..... सायोनारा .....)

आत्मविश्वास ज्ञान-चारित्र युक्त होता है धर्मध्यान।
आर्त-रौद्र रिक्त भद्रध्यान परे हाता है धर्मध्यान।।
प्रमुख रूप में अप्रमत्त गुणस्थान से होता है धर्मध्यान।
उपचार रूप से छठे व पाँचवें गुणस्थान से होता धर्मध्यान।।(2)

आज्ञा-अपाय व उपाय संस्थान विचय होता है धर्मध्यान।
श्रावक-मुनिधर्म पालनमय व उत्तमक्षमादि दश भी धर्मध्यान।।

सर्वज्ञ आज्ञा को सत्य मनाकर, द्रव्य तत्त्व व पदार्थों का।
ख्याति-पूजा-लाभ-भोग से रहित चिंतन है आज्ञाविचय धर्मध्यान।(2)
अशुभ नाश हेतु व शुभ(पुण्य) प्राप्ति हेतु होता चिंतन(जो) सतत्।
वह है अपाय विचय धर्मध्यान जो होता है सकारात्मक(भाव)।।
शुभ अशुभ कर्मोदय से जीव पाते हैं सुख व दुःख।
ऐसा चिंतन करने से होता है विपाक विचय धर्मध्यान।।(3)

विश्व में स्थित समस्त द्रव्य व उसके आकार-प्रकार।
उनके गुण व पर्यायों का चिंतन होता(है) संस्थान विचय।।
उत्तम क्षमादि दशविध धर्म व पंचपरमेष्ठीओं का चिंतन।
स्वः-स्व गुणस्थान योग्य धर्म पालन भी होता है धर्मध्यान।।(4)

इन सबका केंद्र या लक्ष्य होता है स्व-आत्म चिंतन।
आत्म संशोधन व आत्म उपलब्धि हेतु होता है धर्मध्यान।।
आत्मकेंद्रित व आत्मलक्ष्यादि बिन धर्मध्यान न संभव।
वस्तु स्वभाव धर्म होने से स्व-शुद्धात्मा प्राप्ति ही प्रमुख।।(5)

अन्यथा सभी धार्मिक क्रियायें हो जाती हैं ढोंग-पाखण्ड।
ख्याति पूजा-लाभ-भोगोपभोग व वर्चस्व हेतु समर्पित।।
ऐसा धर्म तो महाअनर्थ है जो अधर्म-कुधर्म-विधर्म।
प्यास मिटाने हेतु पानीय सेवनीय नहीं विष सेवनीय।।(6)

स्व-पर विश्वहित चिंतन (तथा) करना मैत्री-प्रमोद-कारूण्य-माध्यस्थ।
दयादान-सेवा-परोपकार करना उत्तम चिंतन सभी (है) धर्मध्यान।।
ध्यान-अध्ययन व शोध-बोध करना(व) उसका लेखन व प्रकाशन।
नवकोटि से शुभ भाव करना 'कनक' माने ऐसे धर्मध्यान।।(7)
ओबरी 24.12.2017 रात्रि 08.05

ऐसे बढ़ाएं अपना ब्रेन पावर

हैल्दी और यंग रखने के लिए ब्रेन को एक्टिव रखें। इसके लिए संतुलित खाना, एक्सरसाइज पर्याप्त नींद और शांतचित्त रहना जरूरी है।

सैन्फ्रांसिस्को स्थित यूनिवसिर्वीटी ऑफ कैलिफोर्निया में न्यूरोसाइंटिस्ट माइकल मजैनिक कहते हैं, 'ब्रेन एक लर्निंग मशीन है। तेजी से सीखने की कोशिश करें और इसे एक्टीव रखें। ब्रेन की स्पीड और एक्यूरेसी सुनने और भाषा सीखने से भी बढ़ती है।' ज्यादा से ज्यादा हॉबीज पालें, ताकि ब्रेन उनके जिए संक्रिय रहे।

करे एरोबिक एक्सरसाइज

कनाडा की सेटमैन रिसर्च इंस्ट्यूट के निदेशक और न्यूरोसाइकोलॉजिस्ट डोनाल्ड स्टस कहते हैं कि ब्रेन को हैल्दी और यंग रखने के लिए एरोबिक एक्सरसाइज करें। वाशिंगटन विश्वविद्यालय में साइकोलॉजी के प्रोफेसर मार्क मैकडैनियल कहते हैं, एक्सरसाइज ब्रेन को दुरूस्त रखती है और मेमोरी को रीस्टोर भी कर सकती है। इससे ब्रेन को ब्लड सप्लाई बढ़ती है और वहां ज्यादा पोषण और ऑक्सीजन पहुंचती है।' एक्सरसाइज और ब्रेन हेल्प के शोधकर्ता, यूनिसर्विटी ऑफ इलिनॉयल के आर्थर क्रेमर कहते हैं कि एरोबिक फिटनेस बढ़ती उम्र के मनुष्यों में ब्रेन टिशू लॉस को घटाती है और ब्रेन को तेज करती है।'

ब्रेन के लिए खाएं

एंटीऑक्सीडेंट युक्त भोजन करें, जो नुकसानदायक फ्री रैडिकल्स को न्यूट्रीलाइज कर सके। यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो में जेरियाट्रिक रिसर्च साइंटिस्ट कैरोल ग्रीनवुड कहते हैं, 'ऐसा संतुलित भोजन करें जो उच्च रक्तचाप, डायबिटीज, हाई कोलेस्ट्रॉल और मोटापे से आपको बचाए, ये बीमारियां ब्रेन की दुश्मन हैं।'

शांतचित्त रहें

ब्रेन को शांत रखना भी जरूरी है। क्रॉनिक स्ट्रेस से ब्रेन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हिप्पोकैंपस क्षतिग्रस्त हो सकता है, इसलिए फानी और मनोरंजक गतिविधियों में संलग्न रहें।

ब्रेन को आराम दें

अगर किसी निर्णय को लेकर दुविधा की स्थिति में हैं, तो मस्ती भरी भरपूर नींद लें। अगली सुबह बेहद क्रिएटिव सोल्यूशन मिल जाएगा और समस्या हल हो जाएगी।

सामाजिक बनें

चुटकुले सुने, कॉमेडी फिल्में या प्रोग्राम देखें और खूब मजे करें इससे दिमाग को ऊर्जा मिलेगी। सामाजिक इंसान बने। लोगों के साथ घुलना-मिलना सीखे।(अंजू)

आप किताब पढ़िए, दर्द में 'आराम मिलेगा

क्रॉनिक पेन से परेशान लोगों को वैज्ञानिक ने किताबें पढ़ने की सलाह दी है। यूनिवर्सिटी ऑफ लिवरपुल के शोधकर्ताओं ने पाया है कि किताब पढ़ने से कॉग्नीटिव बिहेवियरल थेरेपी जैसा फायदा होता है। इस थेरेपी में व्यक्ति के सोचने और बिहेव करने का तरीका बदलने की कोशिश की जाती है। दो चार लोगों का मिलजुलकर पढ़ना और भी अधिक फायदेमंद हो सकता है। यह सीबीटी(थेरेपी) का विकल्प भी बन सकता है।

संदर्भ -

ध्यानै स्तैः पापं उत्पन्नं तत्क्षपयति भद्रध्यानेन।
जीवः उपशम युक्तो देशयतिःज्ञानसम्पन्नः।।364।।

अर्थ - इन आर्तध्यान और रौद्रध्यान से जो पाप उत्पन्न होता है उसको यह उपशम परिणामों को धारण करने वाला और सम्यकज्ञान का धारण करने वाला देशव्रती श्रावक्र अपने भद्रध्यान से नाश कर देता है।

भद्रध्यान

भद्दस्य लक्खणं पुण धम्मं चिंतेइ भोयपरिमुक्को।
चिंतिय धम्मं सेवइ पुणरवि भोए जहिच्छाए।।(365)

अर्थ : जो जीव भोगों का त्याग करता धर्म का चितवन करता है और धर्म का चिंतवन करता हुआ भी फिर भी अपनी इच्छानुसार भोगों का सेवन करता उसके भद्रध्यान समझना चाहिये।

भावार्थ : भोगों का सेवन करता हुआ भी जो धर्मध्यान धारण करता है उसे भद्रध्यान समझना चाहिये।

धर्मध्यान के भेद

धम्मज्झाणं भणियं आणापायाविवायविचयं च।
संठाणं विचयं तह कहियं झाणं समासेण।।(366)

अर्थ : आज्ञा विचय, अपाय विचय, विपाक विचय और संस्थान विचय ये चार अत्यंत संक्षेप में धर्मध्यान के भेद हैं।

आज्ञाविचय धर्मध्यान का स्वरूप

छद्दव्वणवपयत्था सत्तवि तच्चाइं जिणवराणाए।
चिंतइ विसयविरत्तो आणा विचयं तु तं भणियं।।।(367)

अर्थ : जो मनुष्य इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होकर भगवान की आज्ञा प्रमाण छह द्रव्य, नौ पदार्थ और सात तत्वों का चिंतवन करता है उसको आज्ञा विचय नाम का पहला धर्मध्यान कहते हैं।

अपाय विचय

असुहकम्म्स्स णासो सुहस्स वा हवेइ केणुवाएण।
इय चिंततस्स हवे अपाय विचयं परं झाण।(368)

अर्थः अपाय शब्द का अर्थ नाश है। इन अशुभ कर्मों का नाश किस उपाय से होगा अथवा शुभ कर्मों का आस्रव किस उपाय से होगा इस प्रकार जो जीव चिंतवन करता है उसका वह ध्यान अपाय विचय नाम का दूसरा उत्तम धर्मध्यान कहलाता है।

विपाक विचय

असुहसुहस्स विवाओ चिंतइ जीवाण चउगइगयाणं।
विवायविचयं झाणं भणियं तं जिणवरिंदे हिं।।(369)

अर्थ : चारों गतियों में परिभ्रमण करने वाले जीवों के शुभ कर्मों के उदय को तथा अशुभ कर्मों के उदय को जो चिंतवन करता है उसका वह ध्यान विपाकविचय कहलाता है। ये जीव अपने अपने शुभ अशुभ कर्मों के उदय से ही सुख दुःख भोगते है ऐसा चिंतवन करना विपाक विचय नाम का तीसरा धर्मध्यान है।

संस्थान विचय

अह उड्ढतिरियलोए चिंतेइ सपज्जयं संसठाणं।
विचयं संठाणस्स च भणियं झाणं समासेण।।(370)

अर्थःसंस्थान आकार को कहते हैं। लोक के तीन भाग है अधोलोक, मध्यलोक वा तिर्यग्लोक और उर्ध्व लोक इनका चिंतवन करना तथा इनमें भरे हुए पदार्थों का उनकी पर्यायों का उन सबके आकारों का चिंतवन करना अत्यंत संक्षेप से संस्थान विचय नाम का चौथा धर्मध्यान कहलाता है।

धर्मध्यान कहाँ होता

मुक्खं धम्मज्झाणं उत्तं तु पमायविरहिए ठाणे।
देस विरए पमत्ते उवयारेणेव णायव्वं।।(371)

अर्थ : यह धर्मध्यान मुख्यता से प्रमाद रहित सातवें गुणस्थान में होता है तथा देशविरत पाँचवे गुणस्थान में और प्रमत्त संयत छठे गुणस्थान में भी यह धर्मध्यान उपाचार से होता है। ऐसा समझना चाहिये।

दूसरे प्रकार के धर्मध्यान का स्वरूप

दहलक्खणसंजुत्तो अहवा धम्मोत्ति वण्णिओ सुत्ते।
चिंता जा तस्स हवे भणियं तं धम्मझाणुत्ति।।(372)

अर्थः अथवा सिद्धांत सूत्रों में उत्तमक्षमा आदि दश प्रकार का धर्म बतलाया है उन दशों प्रकार के धर्मों का चिंतवन करना भी धर्म्य ध्यान कहलाता है।

अहवा वत्थुसहावो धम्मं वत्थू पुणो व सो अप्पा।
झायंताणं कहियं धम्मझाणं मुणिंदेहिं।।
अथवा वस्तुस्वभावो धर्मःवस्तु पुनश्च स आत्मा।।
ध्यायमानानां तत्कथितं धर्म्यध्यानं मुनीन्द्रैः।। 373।।

अर्थ : वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं तथा वस्तुओं में वा पदार्थों में मुख्य वस्तु वा मुख्य पदार्थ आत्मा है। इसलिये उस आत्मा का ध्यान करना और उसके शुद्ध स्वरूप का ध्यान करना धर्मध्यान है। ऐसा जिनेंद्रदेव ने कहा है।

धर्म्यध्यान के दूसरे प्रकार के भेद

तुं फुडु दुविहं भणियं सालंव तह पुणो अणालंवं।
सालंवं पंचण्हं परमेट्ठीणं सरूवं तु।। (374)

अर्थ : वह धर्मध्यान दो प्रकार है एक आलंबन सहित और दूसरा आलंबन रहित। इन दोनों में से पंच परमेष्ठी के स्वरूप का चिंतवन करना है उसको सालम्ब ध्यान कहते हैं।

सातिशय पुण्य से पाप दूर व मोक्ष प्राप्ति(परम सकारात्मकता)

(अशुभ(पाप) से परे शुभ (पुण्य) व दोनों परे शुद्ध(मोक्ष)

- आचार्य कनकनदी

(चाल:- दुनिया में रहना है तो .... क्या मिलिए)

पुण्य करो हे! पुण्य करो, पुण्य के बिना न पाप दूर।
प्रकाश बिना न तम दूर, शुभ बिना न अशुभ दूर।।
अशुभ-शुभ व शुद्ध भाव, जीवों के होते तीनों भाव। (1)
एक समय में होते एक भाव, पंचम(काल) में अशुभ-शुभ भाव।।

शुभ न करो तो अशुभ होगा, संसार में केवल दुःख होगा।
अन्याय-अत्याचार-पापाचार होंगे, शोषण से युद्ध। तक होंगे।।
इससे परे करो हे! शुभ भाव, श्रद्धा-प्रज्ञा युक्त सदाचार।
देव शास्त्र गुरु के समादर, दया-दान-सेवा व परोपकार।।(2)

हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील त्याग, परिग्रह प्रति मोह-ममत्व त्याग।
सप्त व्यसन व सप्त मद त्याग, सादाजीवन व उच्चभाव कर।।
सभी जीव प्रति मैत्री भाव धर, किसे भी दुःख न हो भाव करो।
गुणी जीव के प्रति प्रमोद भाव कर गुण-गुणी का समादर करो।।(3)

दुःखी जीव प्रति कृपा कर, दयादान-सेवा व रक्षा करो।
विपरीत वृत्ति से साम्य धर, राग-द्वेष-मोह(व) द्रोह नहीं करो।।

निस्वार्थ भाव से ये सभी करो,ख्याति-पूजा-लाभ से रहो दूर।
ईर्ष्यां-तृष्णा-घृणा से रहो दूर, प्रतिस्पर्द्धा व वर्चस्व नहीं कर।।(4)

इससे होगा सातिशय पुण्य कर्म, पाप-ताप-तनाव होंगे दूर।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश होंगे दूर, आनंद उत्सव होंगे भरपूर।।
संतुष्ठी-शांति-तृप्ति होगी, स्वयमेव प्रशंसा व कीर्ति होगी।
आत्म गौरव व उत्साह में वृद्धि, संवेग-वैराग्य में होगी वृद्धि।।(5)

जिससे शुभ भाव में होगी वृद्धि, साधु बन करो आत्मशुद्धि।
जिससे आध्यात्मिक शक्ति बढेगी, पाप-पुण्य नाश से मुक्ति मिलेगी।।
यह है आध्यात्मिक सार तत्त्व, अज्ञानी मोही (स्वार्थी) से अज्ञात सत्य।
भौतिकवाद परे परम सत्य, 'कनक' का लक्ष्य स्व-आत्म तत्त्व।।(6)

ओबरी 25-12-2017 रात्रि 07:45

लृड से ज्यादा उड को महत्व

कुछ समय पहले यह धारणा थी,ज्यादा आईक्यू यानी इंटेलीजेंस क्वोशन्ट वाले लोग ज्यादा उपलब्धियां हांसिल करते हैं और हर क्षेत्र में बेहतर होते हैं। किंतु अब दौर बदल चुका है । अब ईक्यू यानी इमोशनल क्रोशन्ट को कंपनियां ज्यादा महत्व देने लगी है। इसे इमोशनल इंटेलीजेंस भी कहते हैं। ईक्यू यानी भावनात्मक समझ का मतलब इमोशंस को व्यवस्थित करके सकारात्मक दिशा में ले जाना है। अच्छा ईक्यू हो तो व्यक्ति बेहतर कम्यूनिकेटर, तनाव रहित और चुनौतियों का बेहतर ढंग से सामना करने वाला होता है। इमोशनल इंटेलीजेंस के कॅरियर में महत्व के बारे में आईपीएस अधिकारी हितेश चौधरी बताते हैं कि 'यूपीएससी पहले सिर्फ नॉलेज देखती थी। अब वह भी इमोशनल इंटेलीजेंस को सिलेबस में शामिल कर चुकी है, उन्हें पता है कि प्रशासन को चलाने वाले अधिकारियों में भावनात्मक बौद्धिकता होना भी जरूरी है। देश की अन्य प्रतियोगी परीक्षाएं बैंकिंग, राज्य-लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं में भी इसे कोर्स में शामिल कर चुके हैं।

इसलिये जरूरी है ईक्यू

जो लोग ज्यादा समझदार हो वह ज्यादा सफल हों ऐसा जरूरी नहीं है। जो लोग एकेडमिकली बहुत ज्यादा इंटेलीजेंट हों, वह अपने निजी रिश्तों और कार्यक्षेत्र में असफल भी हो सकते हैं। आईक्यू आपको कॉलेज में एंट्री तो दिला सकता है, लेकिन इमनोशनल इंटेलीजेंसी फाइनल एग्जाम में होने वाले तनाव और इमोशंस को मैनेज करना सिखाती है। एमएनसी में सॉफ्टवेयर इंजीनियर माया मिश्रा कहती हैं, कि, 'मेरा आईक्यू लेवल ज्यादा अच्छा नहीं था, लेकिन इमोशनल इंटेलीजेंसी के कारण जॉब प्लेसमेंट के दौरान पूछे गए सवालों के बेहतर ढंग से जवाब दे सकी।'

उड क्या है ?

ईक्यू यानी इमोशनल क्वोशन्ट या भावनात्मक समझ। इसे इमोशनल इंटेलीजेंस भी कहते हैं। भावनात्मक समझ का मतलब इमोशंस को व्यवस्थित करके सकारात्मक दिशा में ले जाना है। अच्छे ईक्यू वाला व्यक्ति औरों से बेहतर कम्यूनिकेटर हो सकता है। बिना किसी तनाव के काम कर सकता है और चुनौतियों का बेहतर ढंग से सामना कर सकता है।

खुद को और दूसरे को मॉटीवेट करने में मददगार

कॉर्पोरेट सेक्टर और मल्टीनेशनल कंपनियां भी चयन के दौरान युवाओं के ईक्यू को परखती है। इसके लिए कॉलेजों और यूनिवर्सिटी में होने वाले प्लेसमेंट में वे साक्षात्कार और लिखित परीक्षाएं कराती है। एक कंपनी में एचआर मैनेजर प्रियेषा चौरसिया कहती हैं, कि, ''इमोशनल इंटेलीजेंस कार्यक्षेत्र में आने वाली सामाजिक जटिलताओं को दूर करने, खुद को और दूसरों को मॉटिवेट करने में मददगार होता है।'

अच्छे ईक्यू के हैं यह गुण

- जिनका ईक्यू अच्छा होता है, वह अपने इमोशन को खुद पर हावी नहीं होने देते।
- ऐसे लोग आत्मानुशासित होते हैं, जल्दी गुस्सा नहीं होते। इनमें जलन की भावना भी नहीं होती है। हर निर्णय सोच समझकर लेते हैं।

- वे चुनौतियां पंसद करते हैं और ज्यादा काम करते हैं।
- ऐसे लोग अपने आसपास मौजूद लोगों की जरूरत को समझते हैं। वो रिश्तों को बनाए रखने, दूसरों को सुनना, उनसे जुड़ना, सहानुभूति रखना जानते हैं।
- अच्छे ईक्यू वालों में सोशल स्किल अच्छा होता है। यह रिश्तों को बेहतर ढंग से निभाने वाले और प्रभावी कम्यूनिकेट होते हैं।

ईक्यू को ऐसे कर सकते हैं बेहतर

- सिर्फ खुद तक सीमित न रहें, दूसरों को भी आगे आने का अवसर दें।
- अपनी कमजोरियों का मूल्यांकन खुद करें। उन्हें समझते हुए उन्हें दूर करें ।
- कठिन परिस्थितियों में खुद को नियंत्रित करना जरूरी है। परिस्थितियों के अनुसार भावनाओं पर नियंत्रण रखें।
- जो भी करें, उसकी जिम्मेदारी लें। किसी की भावनाओं को ठेस पहुंचाएं तो माफी जरूर मांगे। सामने वाले व्यक्ति को अनदेखा न करें।

अमेरिकन साइकोलॉजिस्ट **डेनियल गोलमेन** ने सबसे पहले 1995 में ईक्यू पर फोकस किया था। अपनी किताब 'इमोशनल इंटेलीजेंस-वॉय इट केन मैटर मोर देन आईक्यू' में उन्होंने बताया है कि किस तरह दूसरे की भावनाओं को समझना सीखना चाहिए हैं। उनका उपयोग कर उनसे तालमेल बैठाना सीखना चाहिए।

लाइफ साइंस : खुशी के पीछे भागने से कुछ नहीं मिलता

सुख की तलाश में आप क्यों हो जाते हैं परेशान?

अमेरिका हर वर्ष व्यक्तिगत संवारने और खुश रहने के प्रोडक्ट पर 626 अरब रूपए खर्च कर देते हैं। इनमें खुश रहने की टिप्स बताने वाली किताबों का बहुत बड़ा हिस्सा होता है। लेकिन, नई रिसर्च से ज्ञात हुआ है आप खुशी को जितनी ज्यादा तलाश करेंगे, वह उतनी अधिक दूर भागेगी।

जर्नल ऑफ एक्सपेरिमेंटल साइकोलॉजी में प्रकाशित स्टडी में प्रसन्नता के बारे में कुछ रोचक निष्कर्ष सामने आए हैं। शोधकर्ताओं ने पाया कि रूस और पूर्व एशिया के छात्र खुशी की खोज के लिए बहुत उत्साहित थे। इन छात्रों की प्रसन्नता का स्तर भी ऊंचा पाया गया। स्टडी के लेखक, ब्रेट फोर्ड कहते हैं, खुश रहने की जीतोड़

कोशिश में लगे अमेरिकियों का मनोबल कमजोर पाया गया। फोर्ड कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी में मनोविज्ञान में रिसर्च कर रहे हैं।

खुशी के प्रति विभिन्न संस्कृतियों के नजरिए में विसंगति छिपी है। जापान जैसे सामूहिक समाजों में प्रसन्नता को सामाजिक व्यवहार से जोड़ा जाता है। जैसे कि आप मित्रों के साथ कितना समय गुजारते हैं, माता-पिता की देखभाल करते हैं आदि। फोर्ड बताते हैं इस तरह का सामाजिक जुड़ाव सुखी जीवन का हिस्सा है। लेकिन, अमेरिका में अक्सर खुशी को निजी सफलता-अच्छे करिअर की तलाश, सुख-सुविधा के सामान की खरीदारी से आंकते हैं। इस कारण अमेरिकी जीवन भर कमतर महसूस करते हैं। फोर्ड का कहना है, अधिकतर लोग एकदम तटस्थ स्थिति में रहते हैं। सुखी जीवन का अर्थ दिन भर खुशी के क्षण बने रहने से नहीं है।

इस बीच साइंस ने आनंद और सुख की भावना महसूस करने के लिए कुछ नए तरीके बताए हैं। इनमें से कोई भी रास्ता ऐसा नहीं है जिसमें खुशी के पीछे भागने की जरुरत पड़े ।

खुश रहने के पाँच वैज्ञानिक तरीके

1. **पॉजिटिव गतिविधियां** – पिछले वर्ष एक स्टडी में पाया गया, अपनी दिनचर्या में बगीचे की देखभाल, मित्रों से मुलाकात जैसे कार्यक्रम रखने वाले लोगों में खुशी की भावनाएं उन लोगों से अधिक रही जिन्होंने ऐसे कोई कार्यक्रम नहीं बनाए थे।
2. **नजरिया बदलें** – जब लोग सोचते हैं कि उनके पास अधिक समय नहीं है तब वे क्षणिक और जोश भरी खुशी की बजाय स्थायी खुशी चाहते हैं। रिसर्च से जानकारी मिली है, शांति को महत्व देने वाले लोग अधिक तनावमुक्त गतिविधियां करते हैं।
3. **वर्तमान में जिएं** – एक स्टडी में लोगों को शास्त्रीय संगीत सुनाया गया जिन लोगों से कहा गया कि वे खुश महसूस करने के लिए कोशिश करे उनका मूड खराब रहा। दूसरी तरफ चुपचाप संगीत सुनने वालों का मूड अच्छा रहा।
4. **कम उम्मीद करें** – जबर्दस्त मौज-मजे की आशा रखने के नतीजे उल्टे होते हैं। शोधकर्ताओं ने नव वर्ष के पहले और बाद में लोगों की राय जानी थी। जिन लोगों ने नए वर्ष का जश्न मनाने के लिए लंबी-चौड़ी योजना बनाई थी, उन्हें निराशा हाथ लगी।

5. **खुशी के लम्हे याद रखें**- साइकोलॉजी के प्रोफेसर फ्रेड ब्रायंट कहते हैं, अच्छे समय को गुजर जाने के बाद भी याद रखें। उनकी रिसर्च ने दर्शाया है, किसी पॉजिटिव अनुभव से जोड़े रखना मन में प्रसन्नता के उच्च स्तर का संकेत है।

सन्दर्भ :

द्रव्यस्य सिद्धौ चरणस्य सिद्धिः चरणस्य सिद्धि
बुद्धध्वेति कर्माविरताःपरेऽपि द्रव्याविरुद्धं चरणं चरंतु।।13।।

(अमृतचन्द की टीका)

द्रव्य की सिद्धि में चरण की सिद्धि है और चरण की सिद्धी में द्रव्य की सिद्धि है। ज्ञान से आत्म विशुद्धि होती है उससे विवेक प्रगट होता है, हेय को त्याग करता है, उपादेय को ग्रहण करता है, बाह्य द्रव्यों से उपेक्षा भाव धारण करता है।

प्रमादवशतः मूलगुन उत्तर गुण में अतिचार आदि लगने पर निंदा,गर्हा, प्रतिक्रमणादि करता है। जब मन धर्मध्यान में स्थिर नहीं रहता है, तब स्वाध्याय स्तुति वंदनादि करता हैं।

शंका : मुनि गृहादि क्रिया को छोड़कर मूलगुण रूप क्रिया को करता है। क्रिया की अपेक्षा दोनों समान होने से बंध भी समान है। अशुभ को छोड़कर अंहिसाव्रत देववंदनादि शुभक्रियाओं से पुण्य बंध होता है क्योंकि शुद्ध की अपेक्षा शुभ अशुभ है, बन्ध की अपेक्षा पुण्य पाप समान है। मुनि धर्म ही बन्ध स्वरूप है और बन्ध स्वरूप होने के कारण संसार का कारण है।

समाधान : शुद्धभाव आत्मा का स्वरूप होने से अत्यन्त उपादेय एवं ग्रहण करने योग्य है। इस शुद्ध भाव की प्राप्ति 15 प्रमाद से रहित सकल चारित्र से शोभित महामुनियों को अप्रमत्तगुणस्थान आदि में होती है।

जो छट्ठा गुणस्थान में प्रवर्तन करते हुए देव वंदना, स्तुति, स्वाध्याय, प्रतिकमणादि का त्याग करता है वह परमागम के रहस्य को नहीं जानता है। अथवा जानता हुआ भी सूत्र निबद्ध आवश्यकों का त्याग करता है। उसने जिन भगवान् द्वारा प्रतिपादित आगम का ही त्याग किया और जिनागम के त्याग के कारण सक्यक्त्व को ही त्याग कर दिया। इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है। इसलिये जब तक निश्चल रूप से निश्चल ध्यान नहीं

होता है तब तक षट् आवश्यक क्रिया को व्रत सहित पालन करना चाहिये।

यह नियमों का फल :-

णाणादिरयण तियमिह सज्झं तं साधयंति जमणियमा।
जत्थ जमासस्सदियाणियमाणियतप्पपरिणामः।।2।।(मू. आ.)

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप साध्य है। यम और नियम इस रत्नत्रय रूप साध्य को सिद्ध करने वाले हैं, साधन के बिना साध्य सिद्धि नहीं होती है। इसलिये महाव्रतादि यम सामायिकादि नियम के बिना रत्नत्रय की सिद्धि नहीं हो सकती है। इसलिये मोक्ष के लिए व्रतादि अनिवार्य है। जो महाव्रतादि आजीवन पालन किया जाता है उसे यम कहते है। सामायिकादि अल्पकालावधि होने से नियम कहलाते हैं।

मूलगुणेसु विसुद्धे वंदित्ता सव्व संजदे सिरसा।
इहपरलोग हिदत्थे मूलगुणे कित्तइस्सामि।।1।।

''इह'' शब्द प्रत्यक्ष को सूचित करने वाला है। 'पर' शब्द इन्द्रियातीत जन्म को कहने वाला है। और 'लोक' शब्द देवों के ऐश्वर्य आदि का याचक है।

'हित' शब्द से सुख, एश्वर्य पूजा सत्कार और चित्त की निवृत्ति फल आदि कहे जाते हैं और 'अर्थ' शब्द से प्रयोजन अथवा फल विवक्षित है। इस प्रकार से इहलोक और परलोक के लिये अथवा इन उभय लोकों में सुख एश्वर्य आदि रूप ही प्रयोजन जिनका, वे इहलोक पर हितार्थ कहे जाते है। अर्थात् ये मूलगुण इहलोक और परलोक में सुख एश्वर्य आदि में निमित्त है। इन मूलगुणों का आचरण करते हुए जीव इस लोक में पूजा, सर्वजन से मान्यता गुरुता(बड़प्पन) और सभी जीवों से मैत्री भाव आदि को प्राप्त करते हैं तथा इन मूलगुणों को धारण करते हुए परलोक में देवों के ऐश्वर्य, तीर्थंकर पद, चक्रवर्ती, बलदेव आदि के पद और सभी जनों में मनोज्ञता, प्रियता प्राप्त करते हैं। ऐसे मूलगुण जो कि सभी उत्तर गुणों के आधारपने को प्राप्त आचरण विशेष है।

ऐसा पसत्थभूदा समणाणं वा पुणो घरत्थाणं।
चरिया परेत्ति भणिदा ताएव परं लहणि सोक्खं।।254।।(प्रवचनसार)

गाथार्थ : यह प्रशस्तभूत चर्या श्रमणों की होती है और गृहस्थों के मुख्य होती है। शास्त्रों में ऐसा कहा गया है। उसी से गृहस्थ परम सौख्य को प्राप्त होता है।

तपोधन दूसरे साधुओं की वैयावृत्ति करते हुए अपने शरीर के द्वारा जो कुछ भी वैश्यावृत्य करते हैं वह पापरंभ व हिंसा से रहित होती है तथा वचनों के द्वारा धर्मोपदेश करते हैं। शेष औषधि अन्नपान आदि की सेवा गृहस्थों के अधीन है, इसलिये वैयावृत्य गृहस्थों का मुख्य धर्म है किन्तु साधुओं का गौण है। दूसरा कारण यह है कि विकार रहित चैतन्य के चमत्कार की भावना के विरोधी तथा इन्द्रिय विषय और कषायों के निमित्त से पैदा होने वाले आर्त्त और रौद्रध्यान के परिणमने वाले गृहस्थों को आत्माधीन निश्चय धर्म के पालने का अवकाश नहीं है। यदि वे गृहस्थ वैयावृत्यादि रूप शुभोपयोग धर्म से वर्तन करे तो खोटे ध्यान से बचते हैं तथा साधुओं की संगति से गृहस्थों को निश्चय तथा व्यवहार मोक्ष मार्ग के उपदेश का लाभ हो जाता है, इससे ही वे गृहस्थ परंपरा से निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

धम्मो दयाविसुद्धो पव्वज्जा सव्वसंग परिचित्ता।
देवो ववगयमोहो उदयकरो भव्यजीवाण।। 2।।(अट्ठ पाहुडं)

दया से विशुद्ध जो धर्म सर्वसंग से रहित प्रवज्या अर्थात् मुनि दीक्षा, मोह से रहित देव भव्य जीवों के लिए उदय कर कहा है।

वर वय तवेहिं सग्गो मा दुक्खं होऊ णिरइ इयरेहिं।
छायातविट्ठायाणं पडिवालंताण गुरु भेद।।25।।(अट्ठपाहुडं)

जब तक रत्नत्रय की पूर्णता नहीं होती है तब तक मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है। जब तक मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है तब तक व्रत तपों का पालन करके स्वर्ग प्राप्त करना श्रेष्ठ है। परंतु अव्रती होकर नरक निर्यंचगति संबंधी दुःख प्राप्त करना श्रेष्ठ नहीं है। तब तक व्रत तपों का पालन करके स्वर्ग प्राप्त करना श्रेष्ठ है। जिस प्रकार एक पथिक को पीछे आने वाले अपने साथी की राह देखने के लिए अत्यन्त उष्ण धूप में बैठने की अपेक्षा शीतल वृक्ष की छाया में बैठना श्रेयस्कर है। ऐसा कौन मूर्ख होगा जो शीतल छाया को छोड़कर अत्यन्त उष्ण धूप में बैठेगा ?

अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितिः।
त्यजेत्तान्यपि सम्प्राप्य परमं पदमात्मनः।।84।।(समाधिशतक)

हिंसा पापादि अव्रतों को छोड़कर अहिंसादि व्रत में अत्यंत निष्ठावान होना चाहिये। उस व्रत के माध्यम से जब परमात्मा पद की प्राप्ति हो जायेगी तब उन व्रतों

को भी त्यागना चाहिये। जिस प्रकार मंजिल के ऊपर चढ़ने के लिये सीढ़ी की आवश्यकता होती है, बिना किसी सीढ़ी के चढ़ा नहीं जा सकता है, परंतु मंजिल के ऊपर जाने के बाद सीढ़ी स्वयंमेव छूट जाती है अथवा सीढ़ी की शेष सीमा के बाद उस सीढ़ी को त्याग कर मंजिल में प्रवेश करते हैं जैसे हम आगे बढ़ जाते हैं पीछे का रास्ता छूट जाता है उसी प्रकार हम गुणश्रेणी आरूढ़ होकर बढ़ जाते हैं तो पीछे की गुणश्रेणी छूट जाती है। जैसे मुनि होने पर श्रावक के व्रत छूट जाते हैं, उसी प्रकार परमात्म पद को प्राप्त करते हैं तो व्रतादि के विकल्प नहीं रहते हैं जैसे दूध से दही, घी बनता है। जब तक घी नहीं बनता है तब तक दूध दही का संरक्षण कारण आवश्यक है। परंतु घी बनने के बाद दूधादि अवस्था नहीं रहती है। जैसे फूल से फल बनता है। फल होने पर स्वयं फूल खिर जाता है।

अशुभाच्छुभायातः शुद्ध स्यादयमागमात्।
रवेर प्राप्त संध्यस्य तमसो न समुद्गमः।। 122।।
विद्युत तमसो रागस्तपः श्रुत निबन्धनम्।
संध्याराग इवार्कस्य जन्तोरभ्युदयाय सः।।123।।
विहाय व्याप्तमालोकं पुरस्कृत्य पुनस्तमः।
रविवद्रागमागच्छन् पातालतलमृच्छति।।124।।(आत्मानुशासन)

अर्थ : यह आराधक भव्य जीव आगम ज्ञान के प्रभाव से अशुभ स्वरूप असंयम अवस्था से शुभ रूप संयम अवस्था को प्राप्त हुआ समस्त कार्यक्रमों से रहित होकर शुद्ध हो जाता है। जिस प्रकार सूर्य जब तक प्रभात काल को प्राप्त नहीं होता है तब तक वह अन्धकार को नष्ट नहीं कर सकता है।

अज्ञान असंयम रूप अंधकार को नष्ट करने वाले प्राणी के जो तप और शास्त्र विषय का जो अनुराग होता है वह सूर्य की प्रभात कालीन राग(लालिमा) के समान अभ्युदय के लिये होता है।

जिस प्रकार सूर्य फैले हुए प्रकाश को छोड़कर और अंधकार को आगे करके जब (अस्त) राग (लालिमा) को प्राप्त होता है तब वह पाताल को जाता है। अर्थात्! अस्त हो जाता है। उसी प्रकार जो प्राणी वस्तु स्वरूप को प्रकाशित करने वाले ज्ञान रूप प्रकाश को त्यागकर अज्ञान, असंयम को स्वीकार करता हुआ संसार-

शरीर-भोग संबंधी राग को प्राप्त होता है तब वह पाताल तल अर्थात् आत्मपतन रूप अवस्था को प्राप्त होता हुआ नरकादि दुर्गति को प्राप्त होता है।

आत्मारूपी सूर्य अनादिकाल से अज्ञान, असंयम, मोहरूपी अंधकार से व्याप्त संसाररूपी रात्रि में संचरण कर रहा है। उसको चिज्ज्योति स्वरूप मुक्ति लोक प्राप्त करना है। उसको पहले अज्ञान असंयम रूपी अंधकार को छोड़कर देव, शास्त्र, गुरु, व्रत, नियम संबंधी राग रूपी दिग्वलय में आना ही होगा। उस समय से पूर्ण अंधकार नहीं हो तो पूर्ण प्रकाश भी नहीं है परन्तु वह आत्मारूपी सूर्योदय के लिए कारण है। जिस प्रकार सूर्योदय के पूर्व पूर्ण प्रकाश नहीं तथा पूर्ण अंधकार नहीं है परंतु वह लालिमा सूर्योदय रूपी अभ्युदय का सूचक है। परंतु जब जीव देवशास्त्र-गुरु-तप-संयम को छोड़कर संसार शरीर प्रति अनुराग करता है तब वह राग उसके पतन का ही कारण होता है। जिस प्रकार सायंकालीन राग(लालिमा) पतन का सूचक है अर्थात् प्रभातकालीन और सायंकालीन दोनों समान होते हुए भी प्रभात कालीन राग अभ्युदय के सूचक हैं और सायंकालीन राग पतन के सूचक है। उसी प्रकार देव-शास्त्र-गुरु-प्रति और संसार शरीर भोग प्रति राग समान होते हुए एक उत्थान का कारण हो तो दूसरा पतन का कारण है।

णिज्जावगो य णाणं वादो झाणं चरित्त णावा हि।
भवसागरंतुभवियातंरंतितिसण्णिवायेण।।100।।(मूलाचार)

अर्थ : खेवटिया ज्ञान है, वायु ध्यान और नौका चारित्र है। इन तीनों के संयोग से ही भव्य-जीव भवसागर को तिर जाते हैं।

विषयविरतिःसंगत्यागः कषाय विनिग्रहः
शम-यमदमास्तत्त्वाभ्यासस्तपश्चरणोद्यमः।।
नियमित मनोवृत्तिर्भक्तिर्जिनेषु दयालुता।।
भवति कृतिनःसंसारब्धेस्तटेनिकटसति।।224।।(आ.शा.)

अर्थ : इन्द्रिय विषयों से विरक्ति, परिग्रह का त्याग, कषायों का दमन राग-द्वेष की शान्ति, यम-नियम, इन्द्रिय दमन, सात तत्त्वों का विचार, मन की प्रवृत्ति पर नियंत्रण जिन भगवान् की भक्ति और प्राणियों पर दयाभाव ये सब भाव उस पुण्यात्मा पुरुष के होते हैं जिसके संसार समुद्र का किनारा निकट आ चुका है अर्थात् निकट

भव्य सम्यग्दृष्टि जीव उपरोक्त व्रतादि स्वरूप नौका में बैठकर संसार रूपी सागर को शीघ्र रूप से पार करता है।

यथा यथा समायाति संवितौ तत्त्वमुत्तमम्।
तथा तथा न रोचंते विषया सुलभा अपि।।37।।
यथा यथा न रोचंते विषयाः सुलभा अपि।
तथातथासमायातिसंवितौतत्त्वमुत्तमम्।।38।।(इष्टोपदेश)

अर्थः जैसे जैसे विशुद्ध आत्मस्वरूप की संवित्ति बढ़ती जाती है वैसे वैसे सुलभ भी इन्द्रिय विषय रूचता नहीं है। जैसे जैसे सुलभ भी इन्द्रिय विषय रूचिकर नहीं लगता है वैसे आत्मसंवित्ति बढ़ती ही जाती है।

णिय अप्पणाण झाणज्झयण सुहामियर सायण्णं णाणं।
मोत्तूणाक्खाणसुहं जो भुंजदि सोहु बहिरप्पा।।126।।

अर्थ : जो ज्ञान, ध्यान, अध्ययन और सुखामृत रसायन पान से विमुख होकर इन्द्रिय सम्बन्धी सुख भोगता है वह निश्चित बहिरात्मा मूढ़ है।

शुभोपयोग एवं पुण्य-पापः

शंकाः व्यवहारनय अपेक्षा शुभोपयोग के प्राध्यान्यता से जो व्रत संयमादि अरिहंत भक्ति आदि भाव हैं वे सब पुण्य बन्ध के कारण होने से एवं रागात्मक होने के कारण हेय हैं, पुण्य से संसार बढ़ता है इसलिये व्रत, संयमादि अरिहंत भक्ति संसार के कारण है ?

सुह परिणामो पुण्णं असुहो पावंत्तिभणिदमण्णेसु।
परिणामो णण्णगदो दुक्खक्खय कारणं समये।।181।। (प्रवचनसार)

अपनी आत्मा से भिन्न अन्य द्रव्य में जो शुभ रूप परिणाम है उससे पुण्य होता है और अशुभ भाव से पाप होता है। जो दोनों भावों से रहित होकर स्व स्वरूप में प्रवर्तमान है उसका संपूर्ण दुःख क्षय हो जाता है।

अज्ञानी मोही से परे मेरा आत्मविकास
(सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-डिग्री-वर्चस्व परे मेरा आत्मविकास)

- आचार्य कनकनंदी

(चालः- मन रे ! तू काहे .....)

'कनक' तू ! आत्मविश्वास कर ऽऽऽ

अज्ञानी-मोही-कामी-स्वार्थी से....तू अप्रभावी हो चल ऽऽऽ (ध्रुव)
ऐसे जन न होते तेरे आदर्श .... भले वे हो किसी भी धर्म के ऽऽऽ
साक्षर-निरक्षर, ग्रामीण हो शहरी किसी भी जाति-राष्ट्र-भाषा के ऽऽऽ
किसी भी आयु(या) परिस्थिति के ऽऽऽ कनक(1)

आबाल-वृद्ध-वनिता व प्रोढ़ .... विद्यार्थी से वैज्ञानिक तक (के) ऽऽऽ
सत्ता-सम्पत्ति व प्रसिद्धि (डिग्री) वाले .... प्रजा से ले नेता साधु आचार्य (के) ऽऽऽ
तेरा आदर्श तो इनसे परे ऽऽऽ कनक (2)

यथा अस्थी से निर्मित्त हर वस्तु .... होती है सदा अस्थीमय ही ऽऽऽ
भले उसका आकार व प्रकार .... हो पशु-पक्षी या-नारकी ऽऽऽ
तथाहि अज्ञानी मोही कामी स्वार्थी ऽऽऽ कनक(3)

ऐसे जीव न स्व-दोषों को जानते .... न मानते, न करते संशोधनऽऽऽ
अन्य को हीन-दीन-दोषी मानकर .... करते उनकी निंदा से ले संशोधन ऽऽऽ
भले हो वे सरल/(भद्र) से ले महान् ऽऽऽ कनक(4)

ऐसे अज्ञानी मोही कामी स्वार्थी .... चाहते सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धिऽऽऽ
भोगोपभोग व वर्चस्व दंभ .... ढोंग-पाखण्ड-आडम्बर प्रभृति ऽऽऽ
'गोमुख-व्याघ्र' समान प्रवृत्ति ऽऽऽ (कनक)(5)

इस हेतु अन्य का करते शोषण .... समय-साधन-धन व श्रम ऽऽऽ
शारीरिक-मानसिक-यौन शोषण .... छल-बल कौशल के माध्यम ऽऽऽ
प्रलोभन-भय-स्नेह-लोभ से ऽऽऽ कनक(6)

ऐसे लोग जो भी काम करते .... न होते हैं पावन व महान्ऽऽऽ
शिक्षा-राजनीति-व्यापार-कानून .... सेवा से लेकर धार्मिक कामऽऽऽ
विष मिश्रित भोजन के सम ऽऽऽ कनक(7)

रावण-कंस-जरासन्ध-हिटलर .... ये सभी तो प्रसिद्ध उदाहरण ऽऽऽ
किन्तु सभी मोही स्वार्थी कामी .... करते स्व शक्ति अनुसार पाप कर्म ऽऽऽ

यथा वयस्क व शिशुनाग सम ऽऽऽ

यथा वयस्क व शिशु शार्क सम ऽऽऽ कनक(8)

इनसे परे तेरा आदर्श (होते) तीर्थंकर .... उनका करो सदा अनुकरण ऽऽऽ

उनके समज्ञान-वैराग्य-समता से .... आत्मा को करो पावन महान् ऽऽऽ

'कनक' यह ही तेरा लक्ष्य महान् ऽऽऽ कनक(9)

ओबरी 26.12.2017 रात्रि 7:55

आत्मा है न मोक्ष सुखः सबसे बड़ा है सासांरिक सुख!

श्रुत-परिचित-अनुभुतःसमस्त काम-भोग बंध कथा

(सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंध कहा)

आस्तिक हो या नास्तिक, कर्तावादी हो या अकर्तावादी, धामिर्क हो या अधार्मिक, देशी हो या विदेशी, कीट-पतंग-पशु-पक्षी हो या स्वर्ग के देवता, गृहस्थ हो या साधु चार्वाक दर्शन/सांसारिक सुख,भोग को प्रायोगिक जीवन में जीते हैं। भले वे किसी भी परम्परा, दिखावा, रीति-रिवाज,पुजा-पाठ,संत-ग्रंथ,पंथ-मत, महापुरुष धर्म संस्थापक, धर्म प्रचारक, मूर्तिपूजक आदि के अनुयायी क्यों न हो। क्योंकि जीव का स्वभाव अनंत सुख स्वरूप होने से प्रत्येक जीव सुख चाहता है और दुःख से भयभीत होता है। सुख की उपलब्धि के लिए अनेक उपयों का शोध-बोध अविष्कार-प्रायोगिकरण अनादि अनंत काल से लेकर आधुनिक काल तक हो रहा है। अतएव ''यतोऽभ्युदयानिःश्रेयससिद्धिस्सः धर्मः'' अर्थात् 'जिससे यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होकर लौकिक/सांसारिक सुख एवं समस्त दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति स्वरूप स्वात्मोपलब्धि रूप मोक्ष की प्राप्ति हो सके उसे धर्म कहते है'' रूपी महान् सूत्र/सिद्धान्त/प्रणाली का निर्माण हुआ। परंतु यथार्थ विश्वास, विवेक, आचरण के बिना जीव अनादि काल से सांसारिक सुख स्वरूप इन्द्रिय जनित काम-भोग, विषय-वासना रूप देह सुख को ही सुख मान रहा है, जान रहा है, भोग रहा है और उसके लिए सतत प्रयत्नशील है।

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंध कहा

एयत्तसुवलंभो णवरि ण सुलह विहतस्स।। 4 समयसार

अनादि काल से जीव ने समस्त काम-भोग-बन्ध कथा को सुना, परिचित हुआ, अनुभव किया अतएव यह सब काम-भोगादि सुलभ है, उस के प्रति अत्याधिक आकर्षण/लोलुपता/तृष्णा है। इस कार्य में संसार के प्रत्येक जीव न केवल शिष्य/प्रशिक्षु/प्रशिक्षाणधीन है परंतु दक्ष/कुशल/मास्टर/आचार्य है। अर्थात स्वयं आचरण करता है और दूसरों को भी आचरित/प्रेरित/प्रशिक्षित करता है, इसीलिए तो निम्न श्रेणीय एककोशीय जीव से लेकर वनस्पति, कीट-पतंग, पशु-पक्षी, मनुष्य, स्वर्ग के देव तक स्वेच्छा से स्व-प्रवृत्ति से सांसरिक सुख के लिए प्रवृत्त होते है।

एकेन्द्रिय जीव से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक अनन्तानन्त जीव केवल सांसारिक सुख ही को जानते हैं, भोगते हैं। क्योंकि इनके मन नहीं होने के कारण वे सम्यग्दृष्टि नहीं बन सकते है जिसके कारण वे सम्यग्ज्ञानी तथा सम्यक् आचरण वाले नहीं बन सकते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव यथा-पशु-पक्षी, मनुष्य,नारकी, देव में तो मन होता है परन्तु वस्तुस्वरूप का यथार्थ विश्वास/श्रद्धान जिस को नहीं होता है वे भी उपर्युक्त जीव के समान ही सांसारिक सुख भोगी होते हैं। उनमें जो सम्यग्दृष्टि होते हैं वे श्रद्धा रूप से तो आत्मसुख को मानते हैं परन्तु आचरण रूप से वे भी सांसारिक सुख को भोगते है। जो सम्यग्दृष्टि के साथ-साथ अणुव्रती/सागार/पंचगुणस्थानवर्ती होते है वे भी श्रद्धा के साथ-साथ कुछ अंश में सांसारिक सुख को त्याग करते हैं तो कुछ अंश में सांसारिक सुख को भोगते है।

अनाद्यविद्यादोषोत्थचतुः संज्ञाज्वरातुराः

शश्वत्स्वज्ञानविमुखाः सागारा विषयोन्मुखा।। 2

अनादिकालीन अविद्यारूपी दोषों से उत्पन्न हाने वाली, चारो संज्ञा रूपी ज्वर से पीड़ित, निरंतर आत्म ज्ञान से विमुख, विषयों के सन्मुख गृहस्थ होते हैं।

जिस प्रकार वात, पित्त और कफ की विषमता से साध्यप्राकृत, असाध्यप्राकृत, साध्यवैकृत, असाध्यवैकृत के भेद से चार प्रकार के ज्वर उत्पन्न होते हैं। उन ज्वरों से पीड़ित होने के कारण मनुष्य हिताहित के विवेक से शून्य हो जाते हैं और अपथ्यसेवी बन जाते हैं, उसी प्रकार अनित्य पदार्थों में नित्य, अपवित्र पदार्थों में पवित्र, दुःख को सुख, हेय पदार्थों को उपादेय, अपने से पृथक् स्त्री, पुत्र, मित्रादिक बाह्य पदार्थों को अपना मानना यही एक अनादिकालीन अविद्या है। इस अविद्यारूप

वात, पित्त, कफ की विषमता से उत्पन्न होने वाली आहार-संज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रह संज्ञारूपी ज्वर से पीडित होकर यह प्राणी हिताहित के विवेक से शून्य होकर अपथ्यसेवी बन रहा है अतः अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं रहा।

अनाद्यविद्यानुस्यूतां ग्रंथसंज्ञामपासितुम्।

अपारयन्तः सागराः प्रायो विषयमूर्च्छिताः।। 3 सा.धर्मा.

अनादिकालीन अज्ञान के कारण परम्परा से आने वाली परिग्रहसंज्ञा को छोडने के लिए असमर्थ प्रायः करके गृहस्थ होते हैं।

जिस प्रकार बीज से अंकुर और अंकुर से बीज यह परम्परा अनादि काल से चली आ रही है, उसी प्रकार अनादिकालीन अज्ञानभाव से परिग्रहादि संज्ञा से अज्ञानभाव (अर्थात् द्रव्यकर्म से भावकर्म और भावकर्म से द्रव्यकर्म) इस प्रकार अनादि (जिसका प्रारंभ नहीं है) अविद्या से उत्पन्न हुई ग्रंथ संज्ञा अर्थात परिग्रह में यह मेरा है इस प्रकार के परिणामों को छोड़ने में असमर्थ होकर प्रायः गृहस्थ स्त्री पुत्रादिक में मैं इनका भोक्ता हूँ, मैं इनका स्वामी हूँ, यह मेरी योग्य वस्तु है इस प्रकार के ममकार, अहंकाररूप विकल्प जाल की परतंत्रता से वशीभूत होकर विषयों में मूर्च्छित हो जाता है। इस श्लोक में प्रायः यह शब्द दिया है इससे यह सूचित होता है कि प्रायः सम्यग्दृष्टि भी चारित्रमोहनीय के वशीभूत होकर विषयों में मूर्च्छित हो जाते हैं, परन्तु कोई विरले सम्यग्दृष्टि जन्मान्तर में किए हुए रत्नत्रय के अभ्यास से भरत चक्रवर्ती आदि के समान चक्रवर्ती, इंद्रपद आदि का अनुभव करते हुए भी ''असतीनाथोपभोगन्याय'' से तत्त्वज्ञान, देश संयम आदि की तत्परता होने से नहीं भोगने वाले के समान है। इस विशेषता को बताने के लिए प्रायः शब्द दिया गया है। सप्तम प्रतिमा से सांसारिक सुख का त्याग अधिक होता जाता है जिससे आत्मिक सुख उस अंश में अधिक होता जाता है। यह हानि एवं वृद्धि क्रम आगे अंश-अंशी भाव से बढ़ता जाता है। क्षुल्लक, ऐलक, आर्यिका/साध्वी तक पंचमगुणस्थान/आध्यात्मिक सोपान की उत्कृष्ट स्थिति है। इस गुणस्थान की इस अवस्था में स्थूल सांसारिक विषय-भोग स्वरूप सुख भोग तो नहीं होता है परन्तु प्रत्याख्यान, संज्वलन तथा नो-कषाय के सद्भाव/उदय के कारण सूक्ष्म सांसारिक सुख का भी सद्भाव है। सर्व सांसारिक भौतिक परिग्रह/साधन त्याग रूप षष्ठम

गुणस्थानवर्ती साधु/अनगार को पूर्ववर्ती उत्कृष्ट पंचमगुणस्थान से भी अधिक आध्यात्मिक सुख का अनुभव होता है जिससे उसे सांसारिक सुख का वेदन और भी सूक्ष्म हो जाता है। क्योंकि -

यथा यथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।

तथा तथा न रोचन्ते, विषया सुलभा अपि ।। इष्टो.

जैसे-जैसे विशुद्ध आत्मस्वरूप के अभिमुख योगीजन गमन करते हैं अर्थात् आत्मस्वरूप में लीन होकर उसकी अनुभूति करते हैं वैसे-वैसे सुलभ भी रमणीय इंद्रिय जनित भोग में बुद्धि उत्पन्न नहीं होती है। महासुख की उपलब्धि होने पर अल्पसुख के कारण का अनादर लोक में भी दिखाई देता है।

यथा यथा न रोचन्ते, विषया सुलभा अपि।

तथा तथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।। इष्टो.

विषय विरक्ति ही योगी की स्व-आत्मा-संवित्ति की सूचना देने वाली है, उसके अभाव से अर्थात्, विषय विरक्ति के अभाव से आत्म संवित्ति भी नहीं हो सकती है। विषय विरक्ति से आत्म-संवित्ति भी वृद्धि को प्राप्त हो जाती है।

निशामयति निश्शेषमिन्द्रजालोपमं जगत्।

स्पृहयत्यात्मलाभाय, गत्वान्यत्रानुतप्यते।। इष्टो.

जो आत्मसंवित्ति का रसिक/ध्याता है वह संपूर्ण चराचर बाह्य वस्तु को अपेक्षा रूप से देखता है। उसे हेय, उपादेय, ग्रहणीय एवं त्यजनीय का ज्ञान होने के कारण इन्द्रजालियाँ (जादूगर) के द्वारा प्रदर्शित सर्प व हार के समान समस्त सांसारिक वस्तु प्रतिभासित होती है इसलिए वह संसार को इंद्रजाल के समान अवास्तविक मानकर चिदानन्द स्वरूप स्व-आत्म-संवित्ति को चाहता है तथापि स्व-आत्मा से अतिरिक्त किसी वस्तु में स्व-चित्त की प्रवृत्ति पूर्व संस्कार वश हो जाती है, तब वह पश्चाताप करता है। वह दुःखी होकर सोचता है कि हाय! मेरे से यह अनात्म कार्य कैसे हो गया।

परंतु संज्वलन एवं नोकषाय के यथायोग्य तीव्र, मध्यम, मन्दता के कारण तदनुकूल सांसारिक सुख का सद्भाव है परन्तु उसकी मंदता के कारण एवं आध्यात्मिक सुख की तीव्रता के कारण वह सुख अकिंचित्कर हो जाता है। यथा-

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य, व्यवहारबहिःस्थिते।

जायते परमानन्दःकश्चिद्योगेन योगिनः।।

देहादि से निवृत होकर जो स्व-आत्मा में लीन होकर प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप व्यवहार से दूर होकर ध्यान करता है ऐसे योगी के स्व-आत्म ध्यान से एक अनिर्वचनीय परमानंद उत्पन्न होता है जो आनंद अन्य में असंभव है।

परंतु यह वर्णन यथार्थ से जो अन्तरंग में चतुर्थ, पंचम, षष्टम, गुणस्थानवर्ती यथा क्रम से जैनी, श्रावक/सागार, साधु/अनगार है उनके लिए न कि केवल बाह्य से जो जैनी, श्रावक, साधु है उनके लिए है। वे बाह्य आचरण वाले पूर्णतः सांसारिक सुख के भोगी ही होते हैं क्योंकि मोही/मिथ्यादृष्टि जो कुछ सांसारिक काम या धार्मिक काम करता है वह सब भोग निमित्त है न कि कर्मक्षय निमित्त है (मिच्छादिट्ठि जं कुणइ तं सव्व भोग णिमित्तं ण हु कम्मक्खय णिमित्तं)

धर्मः शब्द मात्रेण बहुशः प्राणिऽधमा।

अधर्ममेव सेवन्ते विचार जड चेतसाः।। पद्मपु.

अधिकांशतः विचारहीन अधर्मी प्राणी धर्म शब्द को लेकर अधर्म ही सेवन करते हैं। आदि शंकराचार्य कहते हैं कि-

जटिलो मुण्डी लुंचित केशः कषायाम्बरः बहुकृतवेषः।

पश्यन्नपि न च पश्यति मूढः उदर निमित्तं बहुकृत वेषः।।

जटा बढ़ाने वाले, सिर मुंडन करने वाले, कषायाम्बरादि अनेक धार्मिक वेषों को धारण करने वाले मूढ लोग जो कि आत्मधर्म से रहित होने के कारण आत्मा के सत्य धर्म को नहीं देखते हैं वे मूर्ख केवल उदरपोषण के लिए अनेक प्रकार बाह्य वेश को धारण करते हैं। वे केवल स्वार्थ सिद्धि के लिए, यश, प्रतिष्ठा, मान-सम्मान,अर्थशोषण के लिए बाह्य वेश बनाकर धर्मोपदेश करते हैं परंतु अन्तरंग में बगुला भक्त होते हैं। जैसे कि बक पक्षी बाह्य में शुक्ल होता है एवं जलाशय में एक पैर पर खड़ा रहकर ध्यानी के समान ध्यान करता है परंतु जब जलाशय के ऊपर मछली आती है तो वह मछली को ओम् स्वाहा करता है। इस प्रकार कुछ पाखंडी साधु बाह्य से धार्मिक वेश-

भूषा धारण करते है और भोले प्राणियों को अपने चंगुल में फंसाने के लिए अनेक धार्मिक मायाजाल फैलाते है और संयोग मिलने पर बक पक्षी के समान धन, जन, जीवन तक का अपहरण कर लेते हैं। किसी नीतिकर ने कहा भी है-

परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्।

धर्मे स्वयमनुष्ठानं कस्यचित् महात्मनः।।

दूसरो को सदाचार का, धर्म का उपदेश देना सरल है किंतु उस उपदेशानुसार स्वयं आचरण करने वाले जगत् में कोई विरले ही सज्जन हैं। कुछ जिव्हा लालची, स्वार्थी, कामूक व्यक्ति धर्म के ठेकेदार बनकर धर्म के नाम पर मद्य-मांस आदि का प्रचार प्रसार करते हैं।

मद्य मांस च मीन मुद्रा मैथुनमैव च।

एते पंच मकारास्युर्मोक्ष दाहि युगे-युगे।। कालीतंत्र

मद्य-मांस मछली-मुद्रा(पूरी, कचोरी, बडे) और मैथुन ये पांच मकार युग-युग में मोक्ष देने वाले हैं।

पीत्वा-पीत्वा पुनः पीत्वा यावत् पतति भूतले।

उत्थाय च पुनः पीत्वा भूयो जन्म न विद्यते।।

जो सुरा को बार-बार पीता है जिसके कारण वह जमीन में गिर जाता है पुनः खड़े होकर पीता है इस प्रकार व्यक्ति संसार में बार-बार जन्म ग्रहण नहीं करता है।

निष्कर्ष रूप से मेरा (आ.कनकनंदी) जो विभिन्न विधा के लाखों व्यक्तियों का दीर्घ अनुभव है उसके आधार पर मै इस समीकरण पर पहुँचा हूँ कि सामान्य प्राणी से लेकर हर संप्रदाय के अनेक साधु-संत तक पंचेन्द्रियों के भोगोपभोग, चार संज्ञा(आहार, भय, मैथुन, परिग्रह), चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ), पांच पाप (हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह) रूपी सांसारिक सुख/आवेश/विवशता/ परतंत्रता से प्रभावित होकर ही सोचते हैं, जानते हैं, मानते हैं, बोलते हैं, करते हैं किंतु सत्य, समता, आध्यात्मिकता, मोक्षसुख,व्यापकता, उदारता, सहिष्णुता, पवित्रता वीतरागता आदि का प्रायः अभाव रहता है।

कानून में अब बांस पेड़ नहीं, घास ही होगा; कानून में संशोधन संसद में पारित

नई दिल्ली। भारतीय वन कानून के तहत बांस को पेड़ की परिभाषा से बाहर करने संबंधी महत्वपूर्ण बिल बुधवार को राज्यसभा ने पारित कर दिया। लोकसभा 20 दिसम्बर को ही इसे पारित कर चुकी है। यह संशोधन गैर वन क्षेत्र और निजी जमीन पर उगे बांस की कटाई और ढुलाई को आसान बनाने के लिए किया गया है, ताकि आदिवासियों और किसानों की आमदनी बढ़े।

बिल पारित करने के दौरान, कांग्रेस, बीजू जनता दल और समाजवाद पार्टी ने वाकआउट किया। इसी बीच राज्यसभा ने ध्वनिमत से इसे पारित कर दिया। विपक्ष ने विरोध में कहा कि बिल जल्दबाजी में पारित किया जा रहा है। संक्षिप्त चर्चा के जवाब में वन एवं पर्यावरण मंत्री डा. हर्षवर्धन ने कहा कि 1927 के भारतीय वन कानून में बांस पेड़ के तोर पर परिभाषित था, जबकि वनस्पति शास्त्र में इसे घास माना जाता है। इस कानून के चलते किसानों को बांस की कटाई और ढुलाई के परमिट पाने में दिक्कत होती थी । इस बदलाव के लिए देश को 90 साल तक इंतजार करना पड़ा।

मां-बाप की करोड़ों की संपत्ति बच्चे वकीलों को दे देते हैं : कोर्ट

हैदराबाद के एक बड़े औद्योगिक घराने के प्रॉपर्टी विवाद को सुलझाने के लिए सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस कुरियन की अध्यक्षता वाली पीठ ने अनूठी पहल की है। कोर्ट ने परिवार की बुजुर्ग महिला और उनकी तीन बेटियों को 10 जनवरी तक एक साथ रहने को कहा है। इसके बाद ही सुनवाई आगे बढ़ेगी। जस्टिस कुरियन ने कहा कि- ‘आपके साथ आपके बच्चे भी कोर्ट में मौजूद है। आप अपने बच्चों को अपने ही परिवार से दौलत के लिए लड़ना सिखाना चाहते हैं या साथ रहना ? अपने बुजुर्गों की आत्मा को शांति पहुंचानी है तो झगड़ना बंद करें। साथ रहें। आपका समय शुरू होता है अब।’ पारिवारिक विवादों पर भी जिस्टस कुरियन ने कहा कि ‘इन दिनों अदालतों में एक नया ट्रेंड देखने को मिल रहा है। मां-बाप बच्चों के नाम पर करोड़ों की संपत्ति

छोड़ जाते हैं और बच्चे उस संपत्ति को वकीलों की फीस देने में खर्च कर देते हैं। ये कोई अक्लमंदी नहीं है। कोर्ट को भी प्रयास करना चाहिए कि उन बाहरी ताकतों को दूर रखा जाए, जो परिवारों को दोबारा एकजुट करने की राह में रोड़ा बनता है। (मतलब वकीलों से था)।’

सन्दर्भ :-

अतएव हे आत्मन्! भौतिक धन-सम्पत्ति, साधन, उपकरण, मन्दिर-मठ,गिरि, धर्मशाला-वसतिका, निषिधिका आदि द्रव्यात्मक निर्माण/प्रसिद्धि से मुक्त होकर भावात्मक आत्मनिर्माण/सिद्धि की प्रोजेक्ट/कार्य योजना को क्रियान्वयन करो। इसी प्रकार हे आत्मन! तुमने अनन्तबार जन्म ग्रहण किया जिसके कारण अनन्तबार ही मरना पड़ा। अतः ऐसे दुःखप्रद जन्म का महोत्सव कैसे ? अनन्त पंच परिवर्तन में अनन्त नाम, सम्बन्ध, परिचय, प्रसिद्धि, प्रचार-प्रसार, संचार हुआ है अतः जो प्रसिद्धि संसार की ही सिद्धि करने वाली है उसका प्रेम त्याग कर ‘‘सिद्धि स्वात्मोपलब्धि’’ रूपी श्रेय को वरण करो। ये ही यथार्थ से प्रभावना (प्र+भावना = प्रकष्ट भावना) है। हे आत्मन्! मुनिनामभवतिअलौकिकी वृत्तिः’’ अर्थात् भौतिक निर्माण से लेकर ख्याति, पूजा, प्रसिद्धि, पंथ, मत, वाद-विवाद, ईर्ष्या-द्वेष, तेरा-मेरा, संकल्प-विकल्प, संक्लेश, कषाय, वैरत्व, गुट-फूट आदि लौकिक/संसारी कार्य/वृत्ति से भिन्न आत्मख्याति, आत्मपूजा, आत्मध्यान, आत्म-विश्लेषण, आत्म-शोधन, आत्म-विकास तेरा परम कर्तव्य है। हे आत्मन्! केवल मुनिवेश धारण से, पिच्छी कमण्डलु धारण मात्र से, एक भुक्ति भोजन से, पैदल चलने से, केशलोंच सें, बाह्य तपादि बाह्य क्रिया-काण्ड, रीति-रिवाज, पंथ, परम्परा, बाह्य प्रभावना मात्र से कोई संवर, निर्जरा, मोक्ष को प्राप्त नहीं करते हैं। धवला सिद्धान्त ग्रन्थ, भगवती आराधना आदि मुनि आचरण संबंधी प्राचीन ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि भाव विशुद्ध समता, अन्तरंगतप, आत्म ध्यान आदि के बिना जीव ने इतने बार मुनिव्रत धारण किया कि उसके यदि पिच्छी-कमण्डलु एक साथ में संग्रह किया जाए तो उसका ढेर सुमेरु के समान हो जाएगा।

हे श्रेय मार्ग के पथिक मुमुक्षु! अधिकांश गृहस्थी लोग मुमुक्षु न होकर भुभुक्षु, वीतरागी न होकर वित्तरागी (संपत्ति प्रिय) आध्यत्मवादी न होकर भौतिकवादी, मोक्षपथी न होकर पंथवादी होने से वे जो कुछ सोचते हैं, कहते हैं, करते हैं,

अनुमोदना करते हैं, वह सब उन भुभुक्षु आदि भाव से ही युक्त/प्रेरित होते हैं। अतः उनके अनुसार सोचना/कार्य करना भी संसार वर्धक ही है अतएव यह भ्रान्त धारणा को त्याग दो कि केवल एक बार सम्यग्दृष्टि होने मात्र से या व्रती श्रावक, ब्रह्मचारी, क्षुल्लक, आर्यिका, मुनि, उपाध्याय, आचार्य बनने मात्र से श्रेष्ठ वैमानिक देव बन जाओगे या मोक्ष प्राप्त कर लोगे। एक भद्र मिथ्या दृष्टि सरल-सहज-शुभ लेश्या सम्पन्न मिथ्यालिंगी साधु-सन्त-तपस्वी या गृहस्थी भी सामान्य वैमानिक देव तक में जन्म ग्रहण कर सकता है परन्तु सम्यग्दृष्टि से लेकर महाव्रती तक संक्लेश आदि परिणाम से उस भव में भी दुःखी, रोगी, अपमानिता होता है और मरण के अनन्तर तद्-तद् भावानुसार भूत, प्रेत असुरकुमार देव आदि देव दुर्गति से लेकर पशु आदि नीच गति में जन्म लेकर संसार में अनन्त भव प्रमाण अर्धपुद्गल परिवर्तन में परिभ्रमण करता है। तिलोयपण्णति, मूलाचार, भगवती आराधना, धवला, जयधवला आदि ग्रन्थों में भी उपर्युक्त वर्णन विस्तार से किया गया है। कुछ संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से है-

सबल - चरित्ताकेई, उम्मग्गंथा णिदाणगद - भावा।
पावग-पहुदिम्हि मया, भवणवासीसु जम्मंते।। 201

शबल (दोषपूर्ण) चारित्र वाले, उन्मार्ग-गामी, निदान भावों से युक्त तथा पापों की प्रमुखता से सहित जीव भवनवासियों में उत्पन्न होते हैं।

अविणय-सत्ता केई, कामिणि-विरहज्जरेण जज्जरिदा।
कलहपिया पाविट्ठा, जायंते भवन-देवेसु।। 202

कामिनी के विरहरूपी ज्वर से जर्जरित, कलहप्रिय और पापिष्ठ कितने ही अविनयी जीव भवनवासी देवों में उत्पन्न होते हैं।

जे सच्च-वयण-हीणा, हस्सं कुव्वंति बहुजणे णियमा।
कदंप्प - रत्त-हिदया, ते कंदप्पेसु जायंति ।। 205

जो सत्यवचन से रहित हैं, बहुजन में हँसी करते हैं और जिनका हृदय कामासक्त रहता है, वे निश्चय से कंदर्प देवों में उत्पन्न होते हैं।

तित्थयर- संघ पडिमा-आगम-गंथादिएसु पडिकुला।
दुव्विणया णिगदिल्ला, जायंते किब्बिस-सुरेसुं।। 207

तीर्थंकर, संघ(जिन) प्रतिमा एवं आगम-ग्रंथादिक के विषय में प्रतिकूल, दुर्विनयी तथा प्रलाप करने वाले (जीव) किल्विष्क देवों में उत्पन्न होते हैं।

अपने संविधान प्रदत्त अधिकारों के प्रति बढ़ती चेतना और कर्तव्यों के प्रति बढ़ती लापरवाही ने देश में कानून और व्यवस्था के समक्ष परेशानी बढ़ा दी है। इसलिए हमने कानून का राज कायम रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देने वाले व्यक्तित्वों से यह जानना चाहा कि नया साल आखिर किस तरह होगा मुबारक -

अधिकारों के लिए कर्तव्यों को जीवन पद्धति बनाएं

अधिकार और कर्तव्य एक सिक्के के दो पहलू हैं और परस्पर निर्भर है। समाज का एक सदस्य अपने अधिकारों का पूरा प्रयोग उसी स्थिति में कर सकता है जब अन्य सदस्य अपने कर्तव्यों का पालन करें। ऐसा नहीं होने पर भारत सरकार ने मूल कर्तव्यों के निर्धारण के लिए स्वर्णसिंह की अध्यक्षता में एक समिति गठित की। समिति की सिफारिशों के आधार पर 42वें संविधान के जरिए नागरिकों के दस कर्त्तव्य निर्धारित किए। ये बाध्यकारी नहीं हैं, लेकिन उच्चतम न्यायालय ने कई व्यवस्थएं दी है जिसके तहत मूल अधिकारों के स्वच्छंद प्रयोग पर अंकुश लगाना संभव है।

इन व्यवस्थाओं का मकसद भारत में कानून का शासन लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुरूप स्थापित करना है। हम उम्मीद करते हैं कि नए साल में मूल कर्तव्य प्रत्येक नागरिक की जीवन पद्धति और संस्कृति का अभिन्न अंश बने क्योंकि मूल कर्तव्यों के पालन से ही देश की आजादी को अक्षुण्य बनाए रखा जा सकता है

अनु. 51क में नागरिकों के मूल कर्तव्य

- संविधान के आदर्शो, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गान का सम्मान
- राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों का सम्मान
- भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा
- देश की रक्षा और आह्वान करने पर राष्ट्र की सेवा
- समरसता, भातृत्व भावना का विकास और स्त्रियों का सम्मान
- सामरिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का परिरक्षण

- वन, झील, नदी और वन्य जीवों व प्राणियों का संवर्धन
- वैज्ञानिक सोच, मानवीयता, और ज्ञानार्जन की भावना का विकास
- सार्वजनिक संपत्ति का संरक्षण और हिंसा का त्याग
- व्यक्तिगत, सामूहिक और राष्ट्रीय उत्कर्ष की ओर बढ़ने का प्रयास

आम आदमी की सुरक्षा के लिए मजबूत हो न्याय तंत्र

भारतीय संविधान द्वारा नागरिकों को प्राप्त मौलिक अधिकारों की रक्षा और उनसे कर्तव्यों का पालन कराना आज न्यायपालिका के लिए चुनौती बन गया है। न्यायपालिका अपने 67 वें वर्ष में भी मौलिक अधिकार और कर्तव्यों को परिभाषित करने में संघर्ष कर रही है। 2017 में देश भर के न्यायालयों में तीन करोड़ लंबित मामलें दिखाई दिए। इसी तरह रिक्त पद भी निचली अदालत से लेकर सर्वोच्च न्यायालय तक भरे नही गए जिसकी वजह से कोर्ट को मौलिक अधिकार व मानवाधिकार से संबंधित करोड़ों लंबित मामलों से जूझना पड़ रहा है। जूडिशियल प्रोसेस महंगे होने की वजह से ये कई बार आम आदमी की पहुंच से दूर हो जाते हैं। दूर्भाग्यपूर्ण है कि सरकार अपने काम में विफल हो रही है और आम आदमी के अधिकारों की रक्षा करने के लिए न्यायपालिका को अपने स्तर पर काम करना पड़ रहा है। इन्हीं वजहों से न्यायपालिका का इकबाल भी कम हो रहा है।

नोटबंदी के बाद जब आम आदमी को अपने ही पैसे निकालने में दिक्कत आई थोड़ी देरी से ही लेकिन न्यायपालिका को हस्तक्षेप करना पड़ा। जीएसटी अब भी कुछ व्यापारियों और किसानों के लिए पहेली बनी हुई है। किसानों की आत्महत्या में कमी नहीं आई है। यहीं नहीं अनधिकृत विश्वविद्यालयों को यूजीसी से अलग करने के मामले में भी न्यायपालिका ने अहम भूमिका निभाई। इसके साथ ही न्यायपालिका ने निजता के अधिकार को सही ठहराया। तीन तलाक अवैध किया गया और हादिया को लव जिहाद के मामले में आजाद कराया गया। हालांकि, न्याय में विलंब के कारण कोर्ट आम आदमी की नजर में अपना सम्मान खो रहा है। उम्मीद हैं कि नए साल में अदालतों के साहस को और बल मिलेगा। न्यायपालिका पहले से अधिक मजबूत और एकजुट होगी सरकार के खिलाफ नहीं बल्कि आम आदमी की सुरक्षा के लिए।

ताकि न्याय के लिए न दिखानी पड़े

रविंद्र सिंह

सुप्रीम कोर्ट के सीनियर एडवोकेट,

पूर्व जज, इलाहबाद हाई कोर्ट, यूपी विधि आयोग के पूर्व अध्यक्ष

2017 को अगर जजमेंटल ईयर कहा जाए तो गलत नहीं होगा। इस न्यायपालिका के फैसले सबसे ज्यादा सूर्खियों में रहे

2017 में ट्रिपल तलाक, राइट टू प्राइवेसी, गोरक्षा, अयोध्या विवाद, दिल्ली एनसीआर में प्रदूषण जैसे कई मुद्दे थे जब कोर्ट ने सख्त रूख अपनाया। इससे असहज हुई सरकारों ने न्यायपालिका पर अति सक्रियता के सवाल उठाने शुरू कर दिए। जबकि हकीकत यह है कि कार्यपालिका की बढ़ती निष्क्रियता की वजह से न्यायपालिका को अतिरिक्त सक्रिय होना पड़ता है। जब विधायिका और कार्यपालिका अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन सही तरीके से नहीं करती तब न्यायपालिका के अलावा कोई विकल्प देश के सामने नहीं बचता। इसके बाद जब न्यायपालिका हस्तक्षेप करती है तो उस पर प्रहार किया जाता है। विषय चाहे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक या किसी से संबंधित हो। इन वजहों से अदालतों पर बोझ भी बढ़ गया है। अदालतें मुकदमों के दबाव में काम कर रही है। समय से मुकदमों का निस्तारण असंभव हो गया है। फिर इसका दोष भी न्यायपालिका पर आता है। आने वाले वर्ष में भी न्यायपालिका के सामने चुनौतियां कम नहीं रहेगी। नए साल में प्रदेश व केद्रं सरकार अपने काम को गंभीरता से लें, नियुक्ति और चयन प्रक्रिया में पारदर्शिता व योग्यता पर अनदेखी न करें। उम्मीद है कि नए साल की शुभ दृष्टि देश पर पड़े, कार्यपालिका अपना दायित्व समझे ताकि न्यायपालिका का इकबाल कम न हो।

8.7% मामले लंबित हैं पिछले एक दशक से

केस के स्वरूप के हिसाब से लंबित केस

कुल मामले : 2,60,64,045

दीवानी केस : 79,84,072

अपराधिक : 1,80,79,973

वर्ष के हिसाब से लंबित मामले

अवधि	दीवानी	आपराधिक	औसत
10 साल से अधिक	5,97,260	16,69,972	8.7
पांच से दस साल	12,02,567	29,94,972	16.1
दो से पांच साल	24,33,056	50,27,140	28.62
दो साल से कम	37,51,184	83,87,829	46.57

गलत को गलत कहने की ताकत बढ़गी

रामानंदाचार्यस्वामी रामनरेशाचार्य

राम रहीम, रामपाली, वीरेंद्र देव जैसे नामों ने हमारे समाज की छवि धूमिल की। देर से ही सही लोगों ने इनके खिलाफ आवाज उठाई, सजा दिलवाई। आने वाले वर्ष में समाज की आवाज और बुलंद होगी

धन की इच्छा के साथ ही हमारा जन्म होता है। धन के बिना जीवन कैसे विकसित होगा, तो धन हमें चाहिए, लेकिन निर्बंध होकर नहीं चाहिए। धन अर्जन का जो उचित मार्ग है, उससे जो धन अर्जित किया जाए, वही हमें बड़ा व सुखी बनाता है यहीं धर्म है। परिवार भी ठीक इसी तरह से चाहिए। सम्बंध स्वेच्छारिता से नहीं चाहिए। समाज में मर्यादित ढंग से परिवार बढ़े और हम मर्यादित हो, इसी को धर्म कहते हैं। हमारे धर्म से किसी की अवमानना नहीं हो । समाज के लिए बहुत बड़ी चिंता का विषय है कि संतों का स्वरूप लांछित होने लगा है। 2017 में राम रहीम, रामपाल,वीरेन्द्र देव जैसे कई नाम विवादों में रहे और अपने गलत कर्म के लिए जेल भी गए। संत मांगालिक भावों के प्रेरक-संरक्षक होते हैं। दुख होता है देखकर कि रक्षक ही भक्षक हो रहा है, जिसे हम देवता समझते है, वहां राक्षस हो रहा है। समाज को ध्यान रखना चाहिए कि केवल लाल कपड़ा पहन लिया, तो संत नहीं है। केवल सैनिक का कपड़ा पहन लेने से कोई सैनिक नहीं हो जाता। प्रशिक्षण जरूरी है। एक दिन का प्रशिक्षण नहीं, देखना पड़ेगा कि वह लड़ने लायक है या नहीं, उसका कौन-सा आचार-व्यवहार कमजोर है, इन बातों का सेना ध्यान रखती है, तब सैनिक तैयार होते हैं। तब वे देश की रक्षा के लिए अपने को समर्पित करते हैं। किसी को दाढ़ी वाला देखकर मालाओं से लदा, चंदन तिलक, कपड़े, अनुयायियों की भीड़ देखकर

साधु, सन्यासी नहीं समझें। जो दूसरों के लिए जीवन जीता है, जो ईश्वर के लिए जीवन जीता है, वहीं संत है। सुना है, रामरहीम के साथ बहुत लोग जुड़े थे। नेताओं को ध्यान दिलाना चाहिए था, लेकिन नेता तो उसके संरक्षण में जुटें थे, सभी पार्टी के लोग थे। जितना दोष रामरहीम का है, उससे ज्यादा दोष उनको मानने वाले, उन्हें शक्ति देने वालों का है। ऐसे संतों के अनुयायी ही ज्यादा दोषी है। धर्म समाज ने रामरहीम को कभी महत्व नहीं दिया। सही परंपराओं को मानने वालों ने कभी आसाराम को भी महत्व नहीं दिया था। रामरहीम, आसाराम दोनों ही परिवार वाले लोग थे। धन्यवाद है, उस लड़की का, उन महिलाओं का जिन्होंने शोषण के विरूद्ध आवाज उठाई। भारतीय संविधन और न्यायपालिका को बहुत-बहुत धन्यवाद। केवल साधु वेशधारण करने से कोई साधु नहीं हो जाता। वैसे इन बदनाम संतो ने तो साधु वेश धारण भी नहीं किया था, लेकिन जिन्होंने धारण किया है, वे भी आज लांछित हो रहे हैं। वैसे साधु वेश पर लांछन नया नहीं है, रावण ने साधु के रूप में ही सीता जी का अपहरण किया था। हालांकि सारे साधु बुरे नहीं है। समाज को सावधान रहना चाहिए, सही संतों के पास जाएं, उनकी ही सेवा करें। जिस तरह आवाज उठ रही है, उसे देख यकीन है कि 2018 में गलत को गलत कहने की ताकत बढ़ेगी। अच्छे संस्थान अच्छे लोग, अच्छे कर्म, के साथ ही जुड़े। निराश न हो, सावधान रहें।

आस्ट्रेलिया इमाम का ट्वीट वायरल

मैं भारत आया तो कट्टर मुल्ला जाएंगे छुट्टी पर

नई दिल्ली, आस्ट्रेलिया के माने-जाने इमाम मोहम्मद ताहिदी एक बार फिर चर्चा में है। कट्टर इस्लाम के खिलाफ अभियान चलाने वाले ताहिदी अब भारत आना चाहते हैं। उन्होंने ट्वीट किया है कि क्या भारत में लोग मुझे जानते हैं, अगर मेरा यह ट्वीट जनवरी से पहले 10 हजार बार रिट्वीट हो गया तो मैं 2018 में भारत आऊंगा। इसके बाद उन्होंने दूसरा ट्वीट किया। इसमें उन्होंने लिखा, 'अगर मैं भारत आया तो वहां के कट्टर मुल्लाओं को इमरजेंसी छुट्टी पर मक्का जान पड़ जाएगा।'

पहले ही ट्वीट को मिले 16 हजार से ज्यादा ट्वीट

ता हिंदी के पहले ट्वीट को करीब 16,000 से ज्यादा रिट्वीट मिले। उनके

ट्वीट पर कई लोग अपनी प्रतिक्रिया दे रहे हैं। ताहिदी का एक फाउंडेशन है, वह इस्लाम पर प्रवचन देने के लिए दुनिया भर में भ्रमण करते हैं। उनके बयान कई मुस्लिम धर्मगुरुओं को रास नहीं आते हैं, जिसके कारण वे आलोचना का शिकार होते रहते हैं।

हिजाब का कर चुके विरोध

बेल्जियम की राजधानी ब्रुसेल्स में हुए धमाके के बाद उन्होंने इमामों से जिहाद पर उपदेश देना बंद करने की अपील की। साथ ही मुस्लिम कट्टर, संगठनों द्वारा किए जाने वाले हमलों की निंदा करने को कहा। ताहिदी मुस्लिम महिलाओं द्वारा पहने जाने वाले हिजाब की आलोचना भी कर चुके हैं।

शरिया कानूनों का भी कर चुके हैं विरोध

ताहिदी वैश्विक मंचों पर शरिया कानून अपनाने वाले मुस्लिम देशों की अलोचना करते हैं। इंडोनेशिया में प्रेम करने वाले गैर-शादी शुदा जोड़ी की खुलेआम कोड़े मारे जाने की परंपरा का उन्होंने विरोध किया।

कट्टरपंथियों का स्वर्ग बन रहा आस्ट्रेलिया

आस्ट्रेलिया में इमाम ताहिदी फाउंडेशन के प्रमुख ताहिदी दुनियाभर में इस्लाम पर उपदेश देने जाते हैं। दुनिया में जब भी कहीं आतंकी हमला होता है, तो वह सभी इमामों को इसके लिए कोसते हैं और जिम्मेदार ठहराते हैं। पिछलें महीने ऑस्ट्रेलिया के मेलबर्न शहर में उन पर हमला हुआ था। 2 मुस्लिम युवकों ने उनकी कार का दरवाजा खोलकर उन्हें कई घूंसे मारे। इसके बाद ताहिदी ने बयान दिया कि आस्ट्रेलिया धार्मिक कट्टरवादियों का स्वर्ग बनता जा रहा है।

उत्साहपूर्वक करते हैं पाप ....

(अज्ञानी मोही कामी अब्रह्म पाप को नव कोटि से उत्साह से करते हैं।)

- आचार्य कनकनदी

(चाल:- आत्मशक्ति....)

अज्ञानी मोही कामासक्त जीव, नहीं जानते हैं, हित-अहित। (धर्म-अधर्म, पुण्य/पाप)
हित को अहित अहित को हित, मानकर करते अधिक पाप।। (घृ)

सच्चिदानंद है जीवों का धर्म, जो राग द्वेष काम रहित।
पंच पाप व सप्त व्यसन रहित, उत्तम क्षमादि दश धर्म युक्त।।
किंतु अज्ञान मोह के कारण, मद्यपि से भी अनंतगुणा मोहित।
पंच पाप सप्त व्यसन सेवते, क्रोध-मान-माया-लोभ सहित।। (1)

यथा हिंसा-झूठ-चोरी होते पाप, तथाहि परिग्रह(व) अब्रह्म।
क्रोध-मान-माया-लोभ भी पाप है, नवकोटि से ये होते सर्जन।।
पंचाणुव्रत व बारह व्रत युक्त, भी करते हैं पापकर्म।
किंतु जो उक्त व्रतों से रहित, वे करते घोरातिघोर पापकर्म।।(2)

उक्त गुण युक्त भी जो श्रावक करते, विवाह नवकोटि से।
वे भी उपार्जित करते हैं पाप, ऐसा कथन है जिनागम में।।
हिंसा-झूठ-चोरी को यथा न ,मानना चाहिए उत्सव सह।
तथाहि अब्रह्म व परिग्रह को नहीं, मानना चाहिए उत्सव सह ।।(3)

सदार संतोषव्रत में भी एक बार, अब्रह्मचर्य सेवन से।
नौ लाख मनुष्य पंचेन्द्रिय लब्ध पर्याप्तक (जीव) मरते कुछ क्षणों में।
कुछ आचार्यों ने नौ लाख कोटि, उक्त जीव मरते हैं लिखा।
आधुनिक विज्ञान ने भी करोड़ों, जीव मरते सिद्ध किया।। (4)

यह तो हुई एक बार की द्रव्य हिंसा, सम्पूर्ण मैथुनों का करो गणित।
उक्त द्रव्य हिंसा के साथ(साथ) भाव हिंसा, होती उससे अधिक।।
परस्पर के राग व द्वेष ईर्ष्या घृणा व वैर विरोध।
कलह-विसंवाद व तलाक से लेकर दहेज हत्या तक।।(5)

तथापि ऐसे अब्रह्म पाप को, उत्साह पूर्वक करते विवाह।
ढोंग पाखण्ड व आडम्बर सहित, करते इसका निर्वाह।।
इसका मानते पुनः हनीमून व, गिफ्ट भी देते परस्पर।
साल गिरह भी मनाते रहते, पापों का करते सत्कार।।(6)

इससे भी परे और भी विकृतियाँ, होती है अब्रह्म पाप में।
परस्त्री गमन-वेश्या रमण, यौन शोषण आदि पाप से।।
अब्रह्म से होती जन संख्या वृद्धि, जिससे उत्पन्न होती समस्याएँ।
खाद्याभाव व कुपोषण, प्रकृति शोषण से लेकर प्रदूषण।। (7)

सामाजिक मान्यता के कारण, विवाह भोग को मिली सम्मति।
अधिकतर जन इस पाप को, पाप रूप में न जानते/(मानते) कुमति।।
उत्कृष्ट ज्ञान वैराग्य सम्पन्न, महान् जन इसे जान/(मान) पाते।
नवकोटि से इस पाप से निवृत्त होकर, आत्मसाधना से सुख पाते।। (8)

यह है भारत की महान् आध्यात्मिक, संस्कृति जिससे बनते भगवान्।
इन सब गुण-दोषों को जानकर, 'कनक' बना बालब्रह्म श्रमण।।
पुण्यस्थ फल मिच्छति पुण्य न कुर्वान्ति मानवाः।
पापस्थ पलंनेच्छति पाप कुर्वन्ति यत्नतः।।(9)

पुण्य का फल सुख चाहते हैं, किंतु न करते पुण्य मानव।
पाप का फल दुःख न चाहते, किंतु पाप करते यत्नतः।।
श्रावकों को भी जो होता है पापार्जन उसे दूर करने हेतु भी।
दया-दान-सेवा-पूजादि करना विधेय सातिशय पूण्यार्जन तू भी।।(10)
ओबरी 23.12.2017 रात्रि 08.00 बजे
(इस संबंधी विशेष परिज्ञान हेतु कविकृत त्रैलोक्य पूज्य ब्रम्हचर्य आदि कृतियों का अध्ययन करें।)

सन्दर्भ :-

शरणमशरणं वो बन्धवो बन्धमूलं।
चितपरिचितदारा द्वारमापद्गृहाणम्।
विपरिमृशतः पुत्राः शत्रवः सर्वमेतत्।
त्यजत भजत धर्म निर्मल शर्मकामाः (60) आत्मानु

हे भव्य जीवों! जिसे तुम शरण(गृह) मानते हो वह तुम्हारा शरण(रक्षक) नहीं हैं, तो बन्धुजन हैं व रागद्वेष के निमित्त होने से बन्ध के कारण हैं, दीर्घकाल से

परिचय में आई हुई स्त्री आपत्तियों रूप गृहों के द्वार समान है, तथा जो पुत्र है वे अतिशय रागद्वेष के कारण होने से शत्रु समान है, ऐसा विचार कर यदि आप लोगों को सुख की अभिलाषा है तो इन सब को छोड़कर निर्मल धर्म की आराधना करें।

इसके विपरीत गुरु और धर्म ही हमारे यथार्थ से परम उपकारी माता-पिता एवं बन्धु है। यथा-

धर्मो गुरुश्च मित्रं च धर्मः स्वामी च बान्धवः
अनाथ वत्सल सोऽयं स त्राता कारणं बिना।।

धर्म ही गुरु है, मित्र है, स्वामी है, बांधव हैं, अनाथ का रक्षक है, बिना स्वार्थ के रक्षण करने वाला है।

गुरुरेव भवेन्माता, गुरुरेव भवेत्पिता,
गुरुरेव भवेत्भ्राता, गुरुरेव भवेद्धितः
गुरुःस्वामी, गुरुर्भर्ता, गुरुर्विद्या गुरुर्गुर।
स्वामी गुरुर्गुरुर्मोक्षो, गुरुर्बन्धु गुरु सखा।

गुरु ही माता है, गुरु ही पिता है, गुरु ही भाई है, गुरु ही हितकारक है, गुरु ही स्वामी है, गुरु ही भरण-पोषण करने वाला है, गुरु ही विद्या है, गुरु ही महान् है, गुरु ही मोक्ष प्रदाता है, गुरु ही बन्धु है और गुरु ही मित्र है।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव।
त्वमेव बन्धु च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या च द्रविणं त्वमेव।
त्वमेव सर्वं मम गुरुदेवः।

हे गुरुदेव! आप ही मेरे माता हैं, आप ही मेरे पिता हैं, आप ही मेरे बन्धु हैं, आप ही मेरे सखा हैं, आप ही मेरी विद्या हैं, आप ही मेरे द्रव्य(धन, सम्पत्ति) हैं और आप ही मेरे सर्वे सर्वा हैं।

सत्य वदात्र यदि जन्मनि बन्धुकृत्य
माप्तं त्वया किमपि बन्धुजनाद्धितार्थम्।
एतावदेव परमस्ति मृतस्य पश्चात्।
संभूय कायमहितं तव भस्मयन्ति। (83) आ. पृ. (80)

जन्मसंतानसंपादि विवाहा दिविधायिनः

स्वा! परेऽस्य सकृत् प्राणहारियों न परे-परे(83)

हे प्राणी! यदि तूने संसार में भाई-बन्धु आदि कुटुम्बी जनों से कुछ भी हितकर बंधुत्व का कार्य प्राप्त किया है तो उसे सत्य बतला। उनका केवल इतना ही कार्य है कि मर जाने के पश्चात् वे एकत्रित होकर तेरे अहितकारक शरीर को जला देते हैं। जो कुटुम्बी जन-परम्परा को बढ़ाने वाले विवाहादि कार्य को करते हैं वे इस जीव के शत्रु हैं, दूसरे जो एक ही बार प्राणों का अपहरण करने वाले हैं वे यथार्थ में शत्रु नहीं हैं।

उपर्युक्त कारणों से माता-पितादि बंधुजन तो आध्यात्मिक दृष्टि से शत्रु के समान हैं ही, परन्तु जो बन्धुजन के प्रति रागात्मक भाव है; वह भाव भी हमें दुःख प्रदान करते हैं। अतः प्रिय बन्धुजन भी हमारे लिये दुःखोत्पादक हैं। उनके जीवित रहने पर जो राग होता है उसमें कर्म बंध ही होता है और वियोग होने के कारण शोक होता है, जिससे शारीरिक, मानसिक संताप होता है जिससे कर्म बंध होता है। इसलिये ये बंधुजन जीवित अवस्था में कष्टप्रदाता दुःखप्रदाता होते हैं, मृत्यु के बाद भी संतापदायक बनते हैं। गुणभद्राचार्य ने कहा भी है-

सुहृदः सुखयन्तःस्युर्दुःखयन्तो यदि द्विषः।

सुहृदोऽपि कथं शोच्या द्विषो दुःखयितुं मृताः। (184)

यदि सुख को उत्पन्न करने वाले मित्र और दुःख को उत्पन्न करने वाले शत्रु माने जाते हैं तो फिर जब मित्र भी मर कर के वियोगजन्य दुःख को करने वाले हैं, तब वे भी शत्रु ही हुए हैं। फिर उनके लिये शोक क्यों करना चाहिए ? नहीं करना चाहिये।

कोहं माणं निगिण्हिता मायं लोभं च सत्वसो।

इन्द्रियाइं वसे काउं अप्पाणं उवसंहरे।।17।।

तू क्रोध, मान, माया और लोभ को पूर्णतया निग्रह करके इन्द्रियों को वश में करके अपने आपको को उपसंहार कर अनाचार से निवृत्त कर।

उस संयमता के सुभाषित वचनों को सुनकर रथनेमि धर्म में सम्यक् प्रकार से वैसे ही स्थिर हो गया, जैसे अंकुश से हाथी हो जाता है। वह मन, वचन, और काय गुप्त जितेन्द्रिय और व्रतों में दृढ़ हो गया। जीवन पर्यन्त निश्चल भाव से श्रामण्य का पालन करता रहा।

एवं करेन्ति संबुद्धा पाण्डिया पवियवश्वणा।

विणियट्टन्ति भोगेसु जहा सो पुरिसोतमो।। 59।।

सम्बुद्ध, पण्डित और प्रविचक्षण पुरुष ऐसा ही करते हैं। पुरुषोत्तम रथनेमि की तरह वे भोगों से निवृत हो जाते हैं।

अब्रह्मचर्य के भेद

10, विषय अब्रह्म -

पर्यन्तविरसं विद्धि दशधान्यच्च मैथुनम्।

योषित्संगाविदरक्तेन त्याज्मेव मनीषिणा।। 6।। ज्ञाना. आ.।।

इस ब्रह्मचर्य के विरूद्ध अन्य जो मैथुन है वह दस प्रकार का है और वह अन्त में नीरस है-परिणाम में अहितकारक है, ऐसा निश्चित जानना चाहिए इसलिए बुद्धिमान मनुष्य को स्त्री सम्भोग से विरक्त होकर उस मैथुन का परित्याग ही करना चाहिए।

आद्यं शरीरसंस्कारो द्वितीयं वृष्यसेवनम्।

तोर्यत्रिकं तृतीयं स्यात् संसर्गस्तुर्यमिष्यते।।7।।

योषिद्वषयसंकल्पः पञ्चमः परिकीर्तितम्।

तदङ्गवीक्षणं षष्ठं सत्कारः सप्तमं मतम्।।8।।

पूर्वानभूतसंभोगस्मरणं स्यात्तदष्टमम्।

नवमं भाविनी चिन्ता दशमं वस्तिमोक्षणम्।। 9।।

उक्त दस प्रकार के मैथुन में प्रथम शरीर का संस्कार (श्रृंगार), द्वितीय गरिष्ठ भोजन, तीसरा तौर्यत्रिक गीत का सुनना, नृत्य का देखना और वाद्य का सुनना, चौथा स्त्री से सम्बन्ध स्थापित करना, पाँचवा, स्त्री विषयक विचार, छठा स्त्री के अंगों को देखना, सातवाँ स्त्री का सत्कार करना, आठवाँ पूर्व में अनुभव किये गए सम्भोग का स्मरण करना, नौवाँ आगे की चिन्ता और दसवाँ वीर्य का क्षरण माना गया है।

विरज्य कामभोगेषु ये ब्रह्म समुपासते।

एते दशमहादोषास्तैस्त्याज्या भावशुद्धये।। 11।।

जो सज्जन काम और भोगों से विरक्त होकर ब्रह्म(आत्मा) की उपासना करते हैं उन्हें अपने परिणामों को निर्मल रखने के लिए इन दस दोषों का परित्याग

करना चाहिए।

स्मरप्रकोपसंभूतान् स्त्रीकृतान् मैथुनोत्थितान्।

संसर्गप्रभवान् ज्ञात्वादोषान्स्त्रीषुविरज्यताम्।।12।।

इसके अतिरिक्त काम के प्रकोप से उत्पन्न हुए स्त्री के द्वारा किये गये मैथुन क्रिया से उत्पन्न हुये तथा संगति के आश्रय से होने वाले दोषों को जानकर स्त्रियों के विषय में विरक्त होना चाहिये।

काम सर्प दंश के 10 वेग -

भोगिदष्टस्य जायन्ते वेगाः सप्तैव देहिनः।

स्मरभोगीन्द्रदष्टानां दशस्युस्ते महाभया।। 28।।

सर्प के द्वारा डसे गये प्राणी के सात ही वेग उत्पन्न होते हैं। किन्तु कामदेव रूप सर्पराज के द्वारा डसे गये उसके वशीभूत हुये प्राणियों के महान् भय को उत्पन्न करने वाले वेग दस हुआ करते हैं।

प्रथमे जायते चिन्ता द्वितीये द्रष्टुमिच्छति।

स्युस्तृतीयेऽतिनिश्वासाश्चतुर्थे भजते ज्वरम्।।29।।

पञ्चमे दह्यते गात्रं षष्ठे भक्तं न रोचते।

सप्तमे स्यान्महामूर्च्छा उन्मत्तत्वमथाष्टमे।।30।।

नवमे प्राणसंदेहो दशमे-मुच्यते-ऽसुभिः।

एतैर्वेगैः समाक्रान्तो जीवस्तत्वं पश्यति।।31।।

वे इस वेग इस प्रकार है, पहले वेग में चिन्ता उत्पन्न होती है- स्त्री के विषय में विचार उदित होता है, दूसरे वेग में उसको देखने की इच्छा करती है, तीसरे वेग में अतिशय श्वासोच्छ्वास होते हैं वह दीर्घ श्वाँसों को छोड़ता है, चौथे वेग में ज्वर का अनुभव करता है पाँचवे वेग में शरीर में दाह उत्पन्न होती है, छठे वेग में भोजन नहीं रूचता है, सातवें वेग में दीर्घ मूर्च्छा आती है वह अचेत हो जाता है, आँठवे में उन्मत्तता होती है वह पागल के समान चेष्टा करने लगता है, नौवें वेग में प्राणों का सन्देह होने लगता है- वह मरणोन्मुख हो जाता है, ओर दसवें वेग में प्राणों से मुक्त हो जाता है - मर जाता है। इस प्रकार इन दस वेगों से पीड़ित होकर कामी जीव वस्तुस्वरूप को नहीं देखता है।

संकल्पवशतस्तीव्रा वेगा मन्दाश्च मध्यमाः।

मोहज्वरप्रकोपेन प्रभवन्तीह देहिनाम्।।32।।

लोक के मोहरूप ज्वर के प्रकोप से प्राणियों के संकल्प के अनुसार वे वेग तीव्र, मध्यम और मन्द भी होते हैं।

कामान्ध की दशा-

शीलशालमतिक्रम्य धीधनैरपिं तन्यते।

दासत्वमन्त्यजस्त्रीणां संभोगाय स्मराज्ञया।। 34 ।।

जो बुद्धिरूप धन के धारक हैं - अतिशय बुद्धिमान हैं वे कामदेव की आज्ञा से शीलरूप कोट को लाँघकर सम्भोग के लिये चाण्डाल स्त्रियों की भी दासता को करते हैं। तात्पर्य यह है कि काम के वशीभूत हुआ मनुष्य नीच स्त्रियों की भी सेवा किया करता है।

नासने शयने याने स्वजने भोजने स्थितिम्।

क्षणमात्रमपि प्राणी प्राप्नोति स्मरशल्यितः ।।36।।

प्राणी कामरूप काँटे से पीड़ित होकर आसन(बैठने), शयन, गमन,कुटुम्बी-जन और भोजन के विषय में क्षणभर भी स्थिरता को नहीं प्राप्त होता है।

अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार काँटे से बिद्ध हुआ मनुष्य उनकी वेदना से अतिशय दुःखी होता है और इसीलिए उसका मन भोजनपानादि किसी भी कार्य में नहीं लगता है उसी प्रकार काम की वेदना से व्याकुल मनुष्य का भी मन किसी कार्य में नहीं लगता हैं।

वित्तवृत्तबलस्यान्तं स्वकुलस्य च लाञ्छनम्।

मरणं या समीपस्थं न स्मरार्तः प्रपश्यति।। 37।।

काम से पीड़ित मनुष्य धन, संयम व शक्ति के विनाश को, अपने कुल की मलिनता को तथा समीप में आये हुए मरण को भी नहीं देखता है।

अनासाद्य जनः कामी कामिनीं हृदयप्रियाम्।

विषशस्त्रानलोपायैः सद्य स्वं हन्तुमिच्छति।।39।।

कामी पुरुष अपने हृदय को प्रिय लगने वाली स्त्री को न पाकर विष, शस्त्र और अग्नि आदि उपायों के द्वारा शीघ्र ही अपने आत्मघात की इच्छा करता है।

दक्षो मूढः क्षमी क्षुद्रः शूरो भीरूर्गूरूधुः।

तीक्ष्णः कुण्ठोवशी भ्रष्टोजनः स्यात् स्मरमोहितः।।

काम से मुग्ध हुआ प्राणी चतुर होकर भी मूर्ख हो जाता है। क्षमाशील होकर भी दुष्ट बन जाता है। शूर होकर भी कायर जैसी चेष्टा करने लगता है। महान् होकर भी हीनता का कार्य करता है। तीक्ष्ण होकर भी कुण्ठित हो जाता है तथा जितेन्द्रिय होकर भी भ्रष्ट हो जाता है।

कुर्वन्ति वनिताहे तोर चिन्त्यमपि साहसम्।

नराः कामहठात्कार विधुरीकृतचेतसः:।। 41 ।।

जिन मनुष्यों ने मन को काम के द्वारा बलपूर्वक व्याकुल किया है वे स्त्री के निमित्त अचिन्तनीय (अपूर्व) भी साहस को किया करते हैं। अभिप्राय यह है कि जो कार्य सर्वसाधारण के लिये अतिशय कठिन प्रतीत होते हैं उनके करने का भी कामी पुरुष साहस किया करता है। इसके लिए अंजन चोर आदि के अनेकों उदारहण कथा ग्रन्थों में देखे जाते हैं।

अन्धादयं महानन्धो विषयान्धीकृतेक्षणः।

चक्षुषान्धो न जानाति विषयान्धो न केनचित्।। 35।।आत्मानुशासन

जिसके नेत्र इन्द्रियविषयों के द्वारा अन्धे कर दिये गये हैं अर्थात् विषयों में मुग्ध रहने से जिसकी विवेक बुद्धि नष्ट हो चुकी है ऐसा यह प्राणी उस लोकप्रसिद्ध अन्धे से भी अधिक अन्धा है, क्योंकि अन्धा प्राणी तो केवल चक्षु के ही द्वारा नहीं जान पाता है परन्तु वह विषयान्ध मनुष्य इन्द्रियों और मन आदि में से किसी के द्वारा भी वस्तु स्वरूप को नहीं जान पाता है।

आशाहुताशनग्रस्तवस्तूच्चैर्वराजां जनाः।

हा किलैत्य सुखाच्छायां दुःखघर्मापनोदिनः ।। 43।।

खेद है कि अज्ञानी प्राणी आशारूप अग्नि से व्याप्त भोगापभोग वस्तु रूप ऊँचे बाँसों से उत्पन्न हुई सुख की छाया (सुखाभास = दुःख) को प्राप्त करके दुःख रूप संताप को दूर करना चाहते हैं।

जो अज्ञानी प्राणी विषयतृष्णा के वश होते हुए अभीष्ट भोगोपभोग वस्तुओं को प्राप्त करके यथार्थ सुख प्राप्त करना चाहते हैं उनका यह प्रयत्न इस प्रकार का है जिस

प्रकार कि सूर्य के ताप से पीड़ित होकर कोई मनुष्य उस संताप को दूर करने के लिये अग्नि के जलते हुये ऊँचे बासों की छाया को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। अभिप्राय यह है कि प्रथम तो ऊँचे बासों की कुछ उपयुक्त छाया ही नहीं पड़ती है, दूसरे वे अग्नि से जल भी रहे हैं, अतएव ऐसे बाँसों की छाया का आश्रय लेने वाले प्राणियों का वह संताप जिस प्रकार नष्ट न होकर और अधिक बढ़ता ही है उसी प्रकार विषय तृष्णा को शान्त करने की अभिलाषा से जो प्राणी इष्ट सामग्री के संचय में प्रवृत्त होता है इससे उसकी वह तृष्णा भी उत्तरोत्तर बढ़ती ही है, परन्तु कम नहीं होती। जैसा कि समन्तभद्र स्वामी ने भी कहा है-

तृष्णाचिषः परिदहन्ति न

शान्तिरासामिष्टेन्द्रियार्थविभवैः परिवृद्धिरेव।

स्थित्यैवकायपरितापहरं निमित्तमित्यात्मवान्

विषयसौख्यपराङ मुखोऽभूत।। पृ स्व. 82

अर्थात विषयतृष्णारूप अग्नि की ज्वालाएँ प्राणी को सब ओर से जलाती हैं। इनकी शान्ति इन्द्रियविषयों की वृद्धि से नहीं होती बल्कि उससे तो वे अधिक बढ़ती हैं।

खातेऽभ्यासजलाशयाऽजनि शिला प्रारब्धनिर्वारिणा,

भूयोऽभेदि रसातलावधि ततः कृच्छ्रात्सुतुच्छं किल।

क्षारं वार्युदगात्तदप्युपहतं पूतिकृमिश्रेणिभिः,

शुष्कं तच्च पिपासतोऽस्य सहसाकष्टं विधेश्चेष्टितम्।। 44 ।।

निकट में जल प्राप्ति की इच्छा से भूमि को खोदने पर चट्टान प्राप्त हुई तब प्रारम्भ किये हुए इस कार्य का निर्वाह करते हुये उसने पाताल पर्यन्त खोदकर उस चट्टान को तोड़ दिया तत्पश्चात वहाँ बड़े कष्टों से कुछ थोड़ा सा जो खारा जल प्रगट हुआ वह भी दुर्गन्ध युक्त और क्षुद्र कीड़ों के समूह में व्याप्त था। इसको भी जब वह पीने लगा तब वह भी शीघ्र सूख गया। खेद है कि दैव की लीला विचित्र है।

शुद्धैर्धनैर्विवर्धन्ते सतामपि न संपदः।

न हि स्वच्छाम्बुभिःपूर्णाः कदाचिदपिसिन्धवः।। 45 ।।

शुद्ध धन के द्वारा सज्जनों की भी सम्पत्तियाँ विशेष नहीं बढ़ती है। ठीक है-

नदिया शुद्ध जल से कभी भी परिपूर्ण नहीं होती हैं।

स धर्मो यत्र नाधर्मस्तत्सुखं यत्र नासुखम्।
तज्ज्ञानं यत्र नाज्ञानं सा गतिर्यत्र नागतिः।। 46 ।।

धर्म वह है जिसके होने पर अधर्म न हो, सुख वह है जिसके होने पर दुःख न हो, ज्ञान वह है जिसके होने पर अज्ञान न रहे, तथा गति वह है जिसके होने पर आगमन न हो।

प्रकुप्यति नरः कामी बहुलं ब्रह्मचारिणे।
जनाय जाग्रते चौरो रजन्यां संचरन्निव ।। 43 ।।

जिस प्रकार रात में संचार करने वाला चोर जागने वाले मनुष्यों के ऊपर कुपित होता है उसी प्रकार प्रायः कामी पुरुष ब्रह्मचारी मनुष्य के ऊपर कुपित होता है।

स्नुषां श्वश्रुं सुतां धात्री गुरुपत्नी तपस्विनीम्।
तिरश्चीमपिकामार्तो नरः स्त्रीं भोक्तुमिच्छति।। 44 ।।

काम से पीड़ित मनुष्य पुत्रवधु, सास,पुत्री, उपमाता (माताजी) गुरु की पत्नी, साध्वी और तिर्यञ्ची(स्त्री पशु) को भी भोगने की इच्छा करता है।

संसर्गाद् दुर्बलां दीनां संत्रस्तामप्यनिच्छतीम्।
कुष्ठिनीं रोगिणीं जीर्णा दुःखितां क्षीणविग्रहाम् ।। 40 ।।
निन्दितां निन्द्यजातीयां स्वजातीया तपस्विनीम्।
बालामपि तिरश्चीं स्त्रीं कामी भोक्तुं प्रवर्तते।। 41 ।।

विषयी मनुष्य अतिशय पुरुष संयोग के कारण दुर्बलता को प्राप्त हुई, दरिद्र, भयभीत, स्वयं इच्छा न करने वाली, कोढ से ग्रासित,रोगयुक्त, वृद्ध, दुखित,, कृश शरीर वाली घृणित नीच जाति की, अपनी ही जाति की, तपस्या करने वाली, अल्पवयस्क और पशु स्त्री तक को भोगने में प्रवृत्त हो जाता है।

देव, शास्त्र, गुरु के उद्देश्य से किया गया महान् आरंभ भी उसकी सामग्री के अन्तर्गत होने से पुण्य के लिए होता है। जैसे विष इतर सामग्री से युक्त होने पर जीवन के लिये प्राण रक्षा का कारण होता है।

भिन्न हेतुक एवायं भिन्नात्मा भिन्न गोवरः।
भिन्नागुबंधस्तेन स्यात्पुण्यबंधर्निबंधनम्।। 340।।

इस आरंभ का चूंकि हेतु भिन्न स्वरूप भिन्न, विषय भिन्न संबंध भी भिन्न है। इसलिये वह पुण्य बंध का कारण होता है।

लोभादि हेतुकः पापारंभो गेहादि गोचरः
पापनुबंधीसंत्याज्यः कार्योऽन्यःपुण्यसाधनः।। 341 ।।

लोभ के कारण जो गृह कुटुंबादि के विषय में आरंभ किया जाता है। वह पाप का बंधक होने से छोड़ने के योग्य है। परंतु दूसरा जिनगृह जिनप्रतिमा के निर्माणादि तथा आहार दानादि विषयक आरंभ पुण्य का बंधक होने से आचरणीय है।

धर्मारंभस्तस्य रज्यति जनः कीर्ति पराजायते।
राजानोऽनुगुणा भवैति रिपवो गच्छंति साहायकम्।।
चेतः कांचन निवृर्त्ति च लभते प्रायोऽर्थमलाभःपरः।
पापारंभभराघनार्थविरतिश्चेतिप्रतितागुणाः।।342।।

जो भव्य धर्म के निर्मित्त आरंभ से निरत होता है, उससे लोग प्रेम करते हैं। उसे उत्तम कीर्ति का लाभ होता है, राजा उसके अनुकूल होता है, शत्रु सहायक होता है। उसका चित्त किसी अभूतपूर्व शांति को प्राप्त करता है। उसे प्रायः बहुत धन का लाभ होता है। तथा वह प्रचुर पापारंभ से परिपूर्ण अनर्थों से निरर्थक कर्मों से विरक्त होता है। इस प्रकार धर्मारंभ भी तत्पर भव्य के ये प्रसिद्ध गुण हुआ करते हैं।

न मिथ्यात्वात्प्रमादाद्वा कषायाद्वा प्रवर्तते।
श्राद्धो द्रव्यस्तवे हेन तस्य बंधोऽस्ती नाशुभः।।343।।

श्रावक चूंकि मिथ्यात्व से, प्रमाद से, अथवा कषाय से द्रव्य स्तव में पूजा प्रतिष्ठा एवं दानादिरूप बाह्य संयम में प्रवृत्त नहीं होता है, इसलिये उनको अशुभ का बंध नहीं होता है।

कृष्यादि कर्म बहुजंगय जंतुघ्राति।
कुर्वति ये गृह परिग्रह भोगसक्ताः।।
धर्माय रंधनकृतां किलपापमेषा।
मेवं वदन्नापि न लज्जित एवं दुष्टः।।

जो गृहस्थ घर, परिग्रह तथा भोगों से आसक्त होकर बहुत से त्रस जीवों के घात के कारणभूत खेती आदिक कार्यो को करते हैं उन्हें धर्म के लिए भोजन को तैयार

करने में पाप का भागी कहने वाले दुष्टों को लज्जा नहीं आती ? तात्पर्य मुनियों को आहार देने के लिए जो आरंभ होता है उससे पाप अल्प और पुण्य महान् होता है। अब ऐसे आरंभ का निषेध करना अनुचित है।

एवं विधस्याप्य बुधस्य वाक्यं सिद्धांत बाह्यं बहु बाधकंच।
मूढ़ा दृढं श्रद्धधते कदर्याः पापे रमतेऽमतयाः सुखेन।।

जो अज्ञानीजन लोभ के वशीभूत होकर इस प्रकार बोलने वाले मूर्ख के भी आगम बाह्य और अतिशय बाधक जिन वचन पर स्थिर श्रद्धा करते हैं वे दुर्बुद्धि पाप में आनंद से रममाण होते हैं, ऐसा समझना चाहिये।

पुण्य-पापः-

शंका : भले पूजादि से पापबंध से बच सकते हैं किन्तु पुण्य बंध से नहीं बच सकते हैं। पुण्य भी संसार का कारण है। यथा-

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुलीलं।
किह त होदी सुसीलं जं संसार पवेसेदि।। 145 ।।(समयसार)

अशुभ कार्य कुशील पापरूप है। शुभ कार्य पुण्य सुशील स्वरूप है। ऐसा साधारण जन कहते हैं। परंतु शुभ कार्य कैसे हैं? जो कि संसार रूप कारागर में प्रवेश करने के लिये कारण है।

जई भणइ कोवि एवं गिह वावारेसु वह माणोवि।
पुण्णे अम्ह ण कज्जं संसारे जंसुवाडेई।। 389 ।। (भावसंग्रह)

गृहवास में रहते हुए भी और गृह व्यापार से प्रवृत्त होते हुए भी कोई कहता है कि हमको पुण्य नहीं चाहिये क्योंकि पुण्य संसार में गिराने वाला है।

समाधान :-

मेहुणसण्णारूढ़ो मारइ णवलक्खसुहुम जीवाई।
इदं जिणवरेहिं भणियं बज्झंतर णिग्गंथ रूवेहिं ।। 390 ।।
गेहे वट्टतस्स य वावरसयाइ सया कुणंतस्स।
आसवइ कम्ममसुहं अट्टरूद्दे पवत्तस्स।। 391 ।।
जाम ण छडइ गेहं तामण परिहरइ इंतयं पावं।
पावं अपरिहतो हेउ पुण्णस्स भजयउ ।। 393 ।।

उपरोक्त कुशंका का समाधान देते हुए आचार्य प्रवर देवसेन ने नय एवं अवस्थाओं का अवलंबन लेकर स्याद्वाद पद्धति से उसका समर्थ एवं आगमोक्त उत्तर दिए हैं।

बाह्य अभ्यंतर ग्रंथों से रहित जिनेन्द्र भगवान् ने बताया है कि एक बार मैथुन संज्ञा से सहित होकर मनुष्य जब भोग करता है तब लिंग और योनि में संघर्षण से 9 लाख पंचेन्द्रिय मनुष्य जातीय लब्ध्य पर्याप्तक जीवों का घात करता है।

पहले जीव मैथुन मोह कर्म के उदय से निर्मल ब्रह्मचर्य रूपी आत्म स्वरूप का घात करता है। उस समय जिस प्रकार सरसों से भरे हुए पात्र में संतप्त लौह शलाका डालने पर सरसों जल जाते हैं उसी प्रकार योनि गत 9 लाख लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य जीव भी जल जाते हैं।

गृह में रहते हुए हजारों गृह व्यापारों को सदा करते हुए अत्यन्त अशुभ आर्त्तरौद्र परिणाम से अशुभ कर्म का आस्रव करता है जो कि एकांत से संसार का कारण होने से अत्यन्त हेय स्वरूप है।

जब तक आर्त्त-रौद्र ध्यानों का निवास स्वरूप गृहवास को त्याग नहीं करते हैं तब तक अत्यंत इन पापों का त्याग नहीं हो सकता है। यदि पाप का त्याग नहीं होता है तो पुण्य कारणों को मत छोड़ो।

पुण्यं कुरुत्व कृतपुण्यमनीदृशोऽपि।
नोपद्रवोऽभिभवति प्रभवेच्च भत्यै।।
संतापयन् जगदशेषमशीतरश्मिः।
पद्मेषु पश्य विद्धाति विकासलक्ष्मीम् ।। 31 ।। (आत्मनुशासन)

हे भव्य जीव! तू पुण्य कर्म को कर, क्योंकि पुण्यवान् प्राणी के ऊपर असाधारण भी उपद्रव कुछ प्रभाव नहीं डाल सकते हैं। इतना ही नहीं बल्कि वह उपद्रव भी उसके लिये संपत्ति का साधन बन जाता है। देखो, समस्त संसार को संतप्त करने वाला भी सूर्य कमलों में विकासरूप लक्ष्मी को ही करता है।

यथांगमध्यक्ष सुखे हि धर्मस्तथा परोक्षऽपिच मोक्ष सौख्ये।
भोगाय भोगादी सुखाय धर्मो मित्रादि यत्नोऽपि निमित्तमात्रम्। 13 ।।
(धर्म रत्नाकर)

धर्म जैसे प्रत्यक्ष सुख का कारण है वैसे ही वह परोक्ष स्वरूप मोक्ष सुख का भी कारण है। भोगोपभोगादि सुख के लिये धर्म ही कारण है। इस सुख के लिये मित्रादिकों का यत्न भी निमित्तमात्र है।

पुण्य का लक्षण :-

पुनात्यात्मानं पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम्।। (सर्वार्थ सिद्धि)

जो आत्मा को पवित्र करता है या जिससे आत्मा पवित्र होता है, वह पुण्य है।

यस्तु शुद्धात्म भावना साधनार्थ बहिरंग व्रत तपश्चरण दान पूजादिंक करोति स परंपराया मोक्षं लभते इति भावार्थ।।

शुद्धात्मा भावना को सिद्ध करने के लिए अथवा प्राप्त करने के लिए बहिरंग व्रत तपश्चरण, दान, पूजादिक को जो करता है वह परंपरा से मोक्ष को प्राप्त करता है। (समयसार 15 म.गा. जयसेनाचार्य तात्पर्यवृत्ति)

पावागम दाराइं अणाइरुवट्ठि याइं जीवम्मि।
तथ्य सुहासवदारं उग्धादेतेकथं सदोसो।। 57 ।। (जय धावला)

जब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता है तब तक जीव अनादिकाल से पाप बंध ही करता है। सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् ही सातिशय पुण्य का आस्रव होता है जीव में अनादिकाल से पापास्रव के द्वार स्थित है। उसके रहते हुए जो जीव शुभास्रव द्वार का उद्घाटन करता है। अर्थात् पापास्रव के कारणभूत मिथ्यात्व, विषय, कषाय, हिंसादि त्याग करके शुभास्रव के कारणभूत सम्यग्दर्शन, दया, दानादि में प्रवृत्त होता है। वह कैसे सदोष हो सकता है ? अर्थात् कभी भी नहीं हो सकता है। इसलिये प्राथमिक जीव को परंपरा से मोक्ष के साधनभूत पुण्य को निदान रहित होकर सतत उपार्जन करना चाहिये।

सालम्बन एवं निरालम्बन ध्यानः-

शंका : अवलम्बन ध्यान से पुण्य होता है और अशुभ ध्यान से पाप होता हैं ये दोनों संसार के कारण है। इसलिये दोनों विकल्पों से उपरम होकर शुद्धात्मानुभूतिरूप निरालम्ब ध्यान क्यों नहीं करना चाहिये।

समाधान :

जो मणइ कोई एवं अत्थि गिहत्थाण णिच्चलं झाण।

सुद्धंचणिरालम्बंणमुणइसोआगमोजइणो ।। 382।। (भावसंग्रह)
कहियाणी दिट्ठिवाए पडुच्च गुण ठाण जाणिं झणाणि।
तह्मास देस विरओ मुक्खं धम्मं ण ज्झाएई।। 383 ।।

समाधान : जो कोई कहता है कि गृहस्थी को निश्चल निरालम्ब, शुद्ध ध्यान होता है वह यतियों के आगम को नहीं जानता है। दृष्टिवाद अंग में जो गुणस्थान को लेकर ध्यान का वर्णन है उससे सिद्ध होता है कि देश विरत पंचम गुणस्थान श्रावक को मुख्य (उत्कृष्ट) धर्मध्यान नहीं होता है।

गृहस्थों को उत्कृष्ट धर्मध्यान नहीं होने के कारण :-

किं जं सो गिहवन्तो बहिरंतर गंथ परिमिओ णिच्चं।
बहु आरंभ पउत्तो कह झायइ सुद्धमप्पाणं ।। 384 ।।
घरवावारा केई करणीया अत्थि तेण ते सव्वे।
ज्झाणट्ठियस्सपुरओचिट्टंतिणिमीलियच्छिस्सं।। 385।।

गृहस्थ सतत बाह्य धन धान्य, स्त्री, पुत्र परिग्रह एवं कामक्रोधादि अंतरंग परिग्रह से वेष्टित रहता है। कृषि व्यापारादि आरंभ से लीन रहता है। इसी प्रकार बाह्य विषय में लीन रहने वाला गृहस्थ शुद्ध आत्मा का ध्यान किस प्रकार कर सकता है। अर्थात् नहीं कर सकता।

गृहस्थ व्यापार को करता हुआ उसका मन, इन्द्रियाँ, भाव उसमें ही तल्लीन रहते है जिस समय में वह ध्यान करने के लिए आँख बंदकर बैठता है उसके सामने संसार-व्यापार मनरूपी चल चित्र के परदे पर अंकित होते हैं। वह उस समय में हाथ में तो माला फिराता है और मन बाजार में घूमता है।

ख पुष्पमथवा श्रृंग खरस्यापि प्रतीयते।
न पुनर्देशकालेऽपि ध्यानसिद्धिगृहाश्रमे।। 17 ।। (ज्ञानार्णवः)

आकाश के पुष्प और गधे के सींग नहीं होते हैं। कदाचित् किसी देश व काल में इनके होने की प्रतीति हो सकती है, परंतु गृहस्थाश्रम में ध्यान की सिद्धि होना किसी देश व काल में संभव नहीं है।

अप्रमत गुणस्थान में मुनि को निरालम्ब ध्यान होता है

जो गृहत्याग करके निर्ग्रन्थ जिनलिंग को धारण किया है इसी प्रकार अप्रमत्त

गुणस्थानवर्ती मुनियों को निरालम्ब ध्यान हो सकता है। गृहस्थों की नहीं।

अरसमरूपवमगंधं अवक्तं चेदणागुणमसद्दं।

जाण अलिंग्गहणं जीव मणिद्दिट्ठ संठाणं।। 127 ।। (पंचास्तिकाय)

गाथार्थ : शुद्ध आत्मा रस, रूप,गंध रहित है। संसारी जीव के समान शुद्ध जीव प्रगट नहीं है इसलिए अप्रगट है। चैतन्य गुण से पूर्ण है। शब्द रहित है। इन्द्रियादि चिह्नों से ग्रहण करने में अयोग्य है, निराकार है।

टीकार्थ :- रागादि विकल्प रहित स्वसंवेदन ज्ञान से समुत्पन्न परमानंद रूप अनाकूलत्व सुस्थित, वास्तविक, सुखामृत जल के द्वारा पूर्ण कलश के समान सर्व प्रदेश में भरे हुए अवस्था को प्राप्त परम मुनियों को जैसे शुद्धात्मा प्रत्यक्ष होता है उसी प्रकार अन्यों को शुद्धात्मा का प्रत्यक्षीकरण नहीं होता है। किन्तु अनुमान लक्षण के द्वारा परोक्षज्ञान से व्यवहार नय से धूम से अग्नि का ज्ञान जैसे होता है उसी प्रकार आत्मा का परोक्ष ज्ञान परमयोगी(ध्यानावस्थापन्न मुनि) को छोड़कर यथायोग्य अन्यों को होता है जैसे दूरस्थ पर्वतादि के ऊपर धूम अग्नि का साक्षात् दर्शन नहीं होता है परंतु बिना अग्नि के धूम नहीं होता है। इस न्याय के अनुसार अनुमान से ज्ञात होता है कि वहाँ पर अग्नि है इसी प्रकार के उपदेश से शास्त्राध्ययन, मनन, चिंतन, अनुप्रेक्षा से परम मुनि को छोड़कर अन्यों को अशुद्धात्मा का अनुमान से ज्ञात होता है।

भारत में

40 % सम्बंधो में (विवाह और विवाह पूर्व) दरार आ रही है।

कारण - स्वार्थी और आत्मकेंद्रित होना गुस्सा तनाव और वक्त की कमी।

क्या करें - रिश्तों को सर्वोच्च प्राथमिकता दें।

अत्याचार में बहुएं आगे...

कुछ समय पहले एक वीडियो सामने आया था, जिसमें एक महिला एक बुजुर्ग को बेरहमी से पीट रही थी। हेल्पेज इंडिया के एक सर्वे में भी यह बात सामने आई है कि कभी मां-बाप को भगवान् मानने वाले बच्चे अब उन्हें बोझा मानने लगे हैं । गैर सरकारी संगठन हेल्पज इंडिया के सर्वे के मुताबिक भारत में 23 फीसदी बुजुर्ग घरेलू अत्याचार के शिकार हैं। खास बात यह कि बुजुर्गों को सताने के मामले में बहुएँ

सबसे ऊपर है। सर्वे में 39 फीसदी बुजुर्गों ने बहू की ओर से अत्याचार किए जाने की बात कही।

ज्यादातर अफसोस केवल रिश्तों को लेकर

प्यार को लेकर होता है ज्यादा अफसोस...

जीवन में कई तरह के अफसोस होते हैं, जिनमें नौकरी के बारे में फैसला, जीवन साथी का चुनाव, किसी के साथ दोस्ती आदि शामिल है। लेकिन प्यार को लेकर सबसे ज्यादा अफसोस होता है। अमरीका में हुई एक स्टडी में यह बात पता चली है...

यूनिवर्सिटी ऑफ इलिनोइस के प्रो. माइक मॉरिसन और केलॉग स्कूल ऑफ मैनेजमेंट के नील रोएस 370 पुरुषों और महिलाओं के बीच रैंडम टेलीफोनिक सर्वे किया। उन्होंने यूं ही फोन नंबर चुनें और उनसे उनके जीवन के बड़े अफसोसों के बारे में पूछा। इसमें सबसे ज्यादा 18.1 प्रतिशत अफसोस रोमांस से जुड़ी बातों के लिए था। इनमें रिश्ता, टूटना, गलत शख्स से रिश्ता जोड़ना तुनकमिजाजी दिखाना, अहंकार नहीं छोड़ना, प्रेमी/प्रेमिका की परवाह नहीं करना, बिछड़ने का दुःख सहना और रिश्ते की अहमियत नहीं समझना जैसे अफसोस शामिल है।

पुरुषों की तुलना में महिलाओं में रोमांस से जुड़े अफसोस ज्यादा और लगभग दोगुने थे। यानि रोमांटिक रिग्रेट्स महिलाओं का दिल ज्यादा तोड़ते हैं और उन्हें लंबे समय तक परेशान करते हैं। रोमांस के बाद नंबर था परिवार से जुड़े अफसोसों का। ऐसे अफसोस का हिस्सा 15.9 प्रतिशत था। पैरटिंग को लेकर भी 9 प्रतिशत अफसोस जताया गया। इन तीनों तरह के अफसोस रिश्तों से संबंधित हैं। इन तीनों को जोड़ दिया जाए(43 प्रतिशत), तो जिंदगी में सबसे ज्यादा अफसोस रिश्तों को लेकर ही होता है। वह काफी हद तक स्वाभाविक भी है। इंसान एक सामाजिक प्राणी हैं। उसके लिए जीवन के हर पल में में रिश्ते महत्वपूर्ण होते हैं। जाहिर है इसलिए अफसोस भी होते हैं। एक्सपर्ट्स का कहना है कि रिग्रेट्स हमारी लाइफ का अभिन्न हिस्सा है।

रिश्तों में गलतफहमियों से बढ़ रही है क्रूरता

छोटी-सी भी गलतफहमी रिश्ते में कड़वाहट ला सकता है, इसलिए बेहतर

होगा कि रिश्ते में गलतफहमियाँ न आने दें और अगर आ ही गई है तो उसे फौरन दूर कर लें। आमतौर पर गलतफहमी का अर्थ होता है- ऐसी स्थिति जब कोई व्यक्ति दूसरे की बात या भावनाओं को समझने में असमर्थ होता है।

अवैध संबंध के शक के चलते की पत्नी की हत्या

राजधानी दिल्ली के एक गाँव में पति ने पत्नी की गला दबाकर हत्या कर दी। इससे पहले दोनों में काफी झगड़ा हुआ था। पुलिस के अनुसार पति को शक था कि उसका किसी और से भी संबंध है। पुलिस के अनुसार आरोपी पत्नी के चरित्र पर शक करता था और फिर उसने 3 व 5 साल की बच्चियों की हत्या कर दी। नोएडा के एक गाँव में पति ने दो बच्चों के सामने पत्नी की बेरहमी से हत्या कर दी। पहले चाकू से पत्नी का गला काटा।

दंपत्ति में अलगाव आम बात है, लेकिन

ये कुछ बानगिया हैं, जिसमें रिश्तों में आई शक की छोटी सी दरार के कारण कैसे क्रूरता की हदें पार कर दी गई। जबकि पति पत्नी में छोटे-छोटे मनमुटाव आम बात मानी जाती है। हमारी बदल रही जीवनशैली में अब ऐसी घटनाएँ आम होती जा रही है। विशेषज्ञों के अनुसार रिश्तों में आई गलतफहमियों को जितनी जल्दी सुलझा लिया जाए उतना ही अच्छा है। आखिर कैसे करें इसे हेंडिल, बता रही है मनोचिकित्सक **नियति धवन**

क्यों होती है गलतफहमी ?

धोखा - यह सबसे आम वजह है। ऐसे में एक साथी यह मानने लगता है कि उसके साथी का किसी और से संबंध है। ऐसा वह बिना किसी ठोस आधार के भी मान लेता है। हो सकता है कि यह सच भी हो, लेकिन अगर इसे ठीक से संभाला न जाएं, तो निश्चित तौर पर यह भयावह रूप ले लेता है। जब भी आपको महसूस हो कि आपका साथी किसी उलझन में है और आपको शक भरी नजरों से देख रहा है, तो तुरंत सतर्क हो जाएँ। हो सकता है आपका किसी से हंसकर बोलना या अपने कलीग की तारीफ करना गलतफहमी पैदा कर रहा हो। संकेत मिलते ही पार्टनर से बात करें और स्थिति स्पष्ट करें।

ऐसे करें दूर

पार्टनर से नाराज होकर बोलचाल बंद करने की बजाय उससे बात करें। लेकिन उस समय जब वह सुनने के मुड में हो। जो हुआ उसके लिए साथी को दोषी न ठहराएँ, बल्कि जो हुआ, उससे कैसे निबटा जाएं, इस पर बात करें।

अपने पार्टनर की बात को बहुत ध्यान व धैर्य से सुने। बेशक आपको बुरा लग रहा हो, पर बात पूरी होने के बाद ही कुछ कहें या निर्णय लें। संवादहीनता रिश्तों को सबसे ज्यादा खोखला करती है। गलत हुई है, तो 'सारी' कहने में हिचके नहीं।

पाक : युवती ने निकाह से पहले मंगेतर से बात की, परिजनों ने गोली मारकर दोनों की हत्या की

पाकिस्तान के सिंध प्रांत में एक लड़की और उसके मंगेतर की निकाह से पहले बात करने पर गोली मारकर हत्या कर दी गई। लड़की नजीरन को उसके चाचा ने घोटकी कस्बे के नयीवाही गांव में मंगेतर शाहीद से बात करके देख लिया। गुस्साए चाचा ने दोनों को गोली मार दी। पुलिस ने इसे ऑनर किलिंग का मामला बताया है।

पाकिस्तान में ऑनर किलिंग आम बात है। पिछले माह ही रावलपिंडी में एक युवक ने परिवार की अनुमति के बिना शादी करने पर अपनी बहन और उसके पति की गोली मारकर हत्या कर दी थी। वहीं, नवंबर में सिंध प्रांत में एक दंपती को जिरगा के कहने पर मार दिया गया था इन पर परिवार को बताए बिना शादी करने का आरोप था। पाकिस्तान के मानवाधिकार आयोग की एक रिपोर्ट के अनुसार पिछले दशक में हर साल 650 ऑनर किलिंग हुई। हालांकि वास्तविक संख्या इससें कहीं अधिक होगी।

हर साल कितनी होती है आत्म हत्याएँ

- 3,800 प्रशिक्षित मनोचिकित्सक ही है भारत में 2015 की एक रिपोर्ट अनुसार 15-35 वर्ष के युवाओं की होने वाली मौतों का में आत्महत्या तीसरा बड़ा कारण हैं।
- 43 सरकारी संस्थाएँ और 26 हजार से कम बैंड ही उपलब्ध है भारत में मानसिक रोगियों के लिए।

- विश्व के 20% बच्चे और किशोर मानसिक बीमारियों या समस्याओं से ग्रसित हैं
- 15-29 वर्ष की आयु के युवाओं में होने वाली कुल मौतों में आत्महत्या दूसरा सबसे बड़ा कारण
- युद्ध और आपदा मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालने वाले बड़े कारण हैं।
- 20% युवाओं को मानसिक अवसाद - एक सर्वे के अनुसार देश में लगभग 20 फिसदी युवाओं में किसी न किसी प्रकार के मानसिक, अवसाद का सामना करना पड़ता हैं। इसके अनेक कारण हो सकते हैं।
- 08 लाख विश्व में एवं 02 भारत में हर साल आत्महत्याएँ होती है।
- 25% आत्महत्याएँ भारत में होती हैं विश्व में होने वाली कुल आत्महत्याओं में से
- 07 करोड़ भारतीय मानसिक बीमारियों से ग्रसित हैं।
- 20% भारतीय मानसिक समस्याओं का सामना कर रहे होंगे विश्व स्वास्य संगठन के अनुसार 2020 तक

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भारत को विश्व का सबसे तनावग्रसित देश माना है।

- 10 अक्टूबर 2014 को केंद्र सरकार ने मानसिक स्वास्थ्य के लिए नई नीति बनाई।
- 50% लोक स्थायी तनाव ग्रसित हैं कॉरपोरेट क्षेत्र में काम करने वाले
- 0.6% हिस्सा स्वास्थय बजट का मानसिक रोगों पर खर्च, कुल बीमार होने वाले लोगों में इनकी संख्या 15 फीसदी है

नया ट्रेंड : पति के साथ ही पत्नियाँ भी करने लगी तलाक की पहल...

फैमिली कोर्ट में सर्वाधिक केस तलाक और भरण पोषण भत्ते के लंबित

मेट्रो कल्चर ने बढ़ाए पति-पत्नी के बीच विवाद, जयपुर में चार साल में ढाई गुना बढ़े तलाक व भरण पोषण के केस

पिछले साल में जयपुर महानगर में मेट्रों कल्चर पनपने से एकाकी परिवारों का चलन बढ़ा है। साथ ही पती-पत्नी के विवाद कोर्ट तक पहुंचने लगे हैं। महानगर की 3

फैमिली कोर्ट में तलाक व भरण पोषण सहित हिन्दू विवाह अधिनियम के तहत लंबित मुकदमों के आंकड़ों पर गौर करें तो 2014 में जहां 2700 केस थे वे नवंबर 2017 तक ढाई गुना बढ़कर 6400 के आसपास पहुंच गए हैं। इतना ही नहीं 2015 से पत्नियां भी तलाक लेने की पहल करने लगी हैं। साल 2015-2016 में दायर कुल केसों में से करीब 30% केसों में पत्नियों ने तलाक की अर्जी इी है।

फैमिली कोर्ट में इस तरह के विवाद पहुंचते हैं

- दांपत्य संबंधों की पुनः स्थापना के मामले।
- पति व पत्नी के अलग रहने की मामले।
- विवाह को शून्य घोषित कराने की मामले।
- धोखे से हुए विवाह का शून्यकरण।
- विवाह विच्छेद कराने के मामले।
- अंतरिम गुजारा भत्ता और पत्नी, माता-पिता व बच्चे भरण पोषण के मामले।

केस बढ़ रहे हैं लेकिन सुविधाएँ नहीं

मुकदमें बढ़ रहे हैं, लेकिन कोर्ट परिसर में आधारभूत सुविधाओं का अभाव हैं। सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बाद भी काउंसिल रूम तक नहीं है। पक्षकार और साथ आने वाले बच्चों को बैठने की जगह नहीं हैं।

डी.एस. शेखावत, अध्यक्ष पारि. न्या बार एसो जयपुर

नहीं हो पाता समय पर केस का निपटारा

हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 21 (बी) के तहत तलाक के मुकदमें का निपटारा 6 माह में करने का प्रावधान है। लेकिन लंबी तारीखें, सम्मन तामील नहीं होने सहित अन्य कारणों से केसों का निपटारा तय समय पर नहीं हो पाता।

01. भरण पोषण के मामले में बच्ची ने 2002 में अपने पिता से गुजारा भत्ता दिलाने का प्रार्थना पत्र लगाया। कोर्ट ने पिता को 600 रू. प्रतिमाह देने के निर्देश भी दिए, लेकिन पालन नहीं हो रहा।
02. एक अन्य मामले में 13 साल पहले पति ने पत्नी से तलाक की अर्जी दायर की थी। लेकिन मामला अभी लंबित चल रहा हैं और निर्णय नहीं हो पा रहा।

एक्सपर्ट व्यू हाईकोर्ट के अधिवक्ता दीपक चौहान का कहना है कि पति पत्नी

के बीच बढ़ती महत्वकाक्षाएँ, टूटते संयुक्त परिवार व एकल परिवारों का चलन, महिलाओं का शिक्षित होना व अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होना और मेट्रो कल्चर की जीवन शैली सहित कारणों से जयपुर महानगर में पति-पत्नी के बीच तलाक व भरण पोषण के मुकदमों में बढ़ोतरी हुई है।

'जो माँ से प्यार नहीं कर सकता, उस पर भरोसा नहीं'

रियाद, भारत में तीन तलाक कानूनी वजहों से सुर्खियों में है। इस बीच सऊदी अरब में तलाक का अनोखा मामला सामने आया है। कई बार पत्नी की यह शिकायत होती है कि पति उसकी बजाय अपनी माँ का ज्यादा ख्याल रखता है। लेकिन यहाँ पत्नी ने इसलिए तलाक दे दिया, क्योंकि पति उससे तो प्यार करता था, लेकिन अपनी माँ को नहीं चाहता था। सुनवाई के दौरान बीवी ने कहा, जो आदमी माँ के लिए अच्छा नहीं, उस पर भरोसा नहीं कर सकती। जज ने तलाक मंजूर कर महिला की प्रशंसा की।

जज ने मंजूर किया तलाक-महिला की प्रशंसा

पत्नी का रखता था ज्यादा ख्याल

पति, पत्नि का हद से ज्यादा ख्याल रखता था। लेकिन अपनी माँ को पसंद नहीं करता था। वह अपनी पत्नी के सामने भी माँ की बुराई करता था। इस पर पत्नी ने तलाक लेने का फैसला ले लिया।

रिपोर्ट ने दहेज भी नहीं मांगा वापस

रिपोर्ट के अनुसार- पती, पत्नी से अलग नहीं होना चाहता। पत्नी ने जज को बताया, पति उसे हर तरह से खुश रखता है। उसकी हर इच्छा पूरी करता है। उसके लिए कुछ भी करने को तैयार हैं। इसके बावजूद वो उसके साथ नहीं रहना चाहती। चंकि उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। महिला ने शादी दिया गया दहेज भी वापस नहीं मांगा हैं।

'छोड़कर जाने का इंतजार नहीं कर सकती'

पत्नी ने इस फैसले पर पति हैरान रह गया। सुनवाई के दौरान पत्नी ने कहा कि वह उस दिन का इंतजार नहीं कर सकती, जब वे उसे छोड़कर चल जाए। चूंकि

इससे पहले वे अपनी मां को छोड़ चुका है। सुनवाई के दौरान पति ने कहा कि उसने पत्नी के लिए अपना घर-परिवार छोड़ा है। इस पर पत्नी ने तुरंत कहा- इसीलिए तो वो तलाक लेना चाहती है। जो मेरे लिए अपना सबकुछ छोड़ सकता है, वो उसे भी छोड़ सकता है।

8 मूलगुण व 12 व्रत युक्त श्रावक भी नहीं होता पूर्ण धार्मिक

(4 वाँ गुणस्थान से धर्म प्रारंभ, 5वाँ गुणस्थान में भद्रध्यान होता है धर्मध्यान नहीं)

- आचार्य कनकनंदी

(चाल :- आत्मशक्ति से ओत प्रोत...)

'वस्तु स्वरूप धर्म होने से, हर द्रव्य होता है धर्ममय।
'सव्वे सुद्धाहु-सुद्धणया' से, हर जीव भी होता धर्ममय।।
शुद्ध नय से यह कथन है, व्यवहार नय से भी जानना विधेय।
चौदहवें गुणस्थान से परे होते, शुद्ध जीव इससे पूर्व संसारी जीव।।(1)

परम सत्य स्वरूप षट् द्रव्य व, सप्त तत्त्व (व) नव पदार्थ का श्रद्धान।
देव, शास्त्र-गुरु श्रद्धान सहित, स्व शुद्धात्मा श्रद्धान से होता सम्यक्त्व।।

गाथा - भयविसण मल विवज्जिय संसार-शरीर भोग णिव्विणो।
अट्ठगुणंग समग्गो दंसण सुद्धो सुद्धो हु पंचगुरु भत्तो।। (5) रयणसार

सप्तभय व्यसन रहित पच्चीस मलदोष रहित (होता) सम्यक्त्व।
संसार-शरीर भोग विरक्त अष्टगुण, अंग युक्त पंचगुरुभक्ति सहित।। (2)

गाथा - जो तसवहाउ विरओ णो विरओ तह य थावरवहाओ।
एक्क समयम्मि जीवो विरयाविरत्ति जिणु कहई ।। (351, भावसंग्रह)

जो त्रसवध से विरक्त न विरक्त होता है स्थावरवध से।
वह होता है विरताविरति, श्रावक ऐसा कहा जिनदेवने।।
पंचाणुव्रत सहित बारहव्रत से सहित होता श्रावक।
तथापि आरंभ-परिग्रह युक्त आर्त्त रौद्र ध्यान संयुक्त ।। (3)

अतएव ऐसा श्रावक को भी, न होता है पूर्ण धर्म ध्यान।

पाप दूर करने हेतु करता, दानपूजादि भद्रध्यान।।
देव-पूजा-गुरुपास्ति स्वाध्याय, संयम तप व दान।
प्रत्येक दिन करता है श्रावक, स्व-पाप दूर निमित्त।। (4)

तथापि प्रत्याख्यान व संज्वलन कषाय से सहित।
नव नो कषाय से सहित अतएव, न होता पूर्णधर्मध्यान।।
आहार-भय-मैथुन-परिग्रह संज्ञा, सहित करता विभिन्न काम।
व्यापार-कृषि-पढ़ाई, नौकरी, औद्योगिक आदि पापात्मक काम।। (5)

भोगोपभोग व यानवाहन व, खान फेक्ट्री के करते काम।
जिससे त्रस-स्थावर जीव मरते, होते विविध पर्यावरण दूषण।।
इससे भी विभिन्न समस्यायें होती, ग्लोबलवर्मिंग व रोग।
अतिवृष्टि व अनावृष्टि भूकम्प, से लेकर सुनामि तक।। (6)

अतएव ही दो कल्याणक युक्त, पंचमगुणस्थानवर्ती तीर्थंकर।
अंतरंग-बहिरंग-परिग्रह त्यागकर, बनते धर्म हेतु मुनीश्वर।।
भोगोपभोग व आरंभ-परिग्रह युक्त तीर्थंकर भी न होते पूर्णधर्मात्मा।
किंतु बहिरंग से ही जो धर्म पालते, वे कैसे होंगे पूर्ण धर्मात्मा ?(7)

कदाचित गधे के भी सिंग होना, संभव है तीन काल में।
किंतु गृहस्थों(श्रावकों) के श्रेष्ठ/(शुद्ध) ध्यान, नहीं संभव कहा आचार्यों ने।।
यह वर्णन करणानुयोग सम्मत, जो है परम यथार्थ।
परम यथार्थ के परिज्ञान हेतु, ''सूरी कनक'' ने बनाया काव्य।।(8)
ओबरी 22.12.2017 रात्रि 09:41

संदर्भ

अर्थ : इस प्रकार भगवान् जिनेंद्रदेव के कहे हुए सात तत्वों का स्वरूप अत्यंत संक्षेप में मैंने कहा। जो जीव इन सातों तत्त्वों का श्रद्धान करता है वही सम्यग्दृष्टि पुरुष है।

अविरय सम्मादिट्ठी एसो उत्तो मया समासेण।

एत्तो उड्ढं वोच्छं समासदो देस विरदो य।। (349)

अर्थ : इस प्रकार मैंने अत्यंत संक्षेप से अविरत सम्यग्दृष्टि नाम के चौथे गुणस्थान का स्वरूप कहा। अब इससे आगे संक्षेप से ही देश विरत अथवा विरताविरत नाम के पाँचवे गुणस्थान का स्वरूप कहते हैं।

5. वितराविरत गुणस्थान का स्वरूप

पंचमयं गुणठाणं विरयाविरत्ति णामयं भणियं।
तत्थवि खयउवसमिओ खाइओ उवसमो चेव।। 350

अर्थ : भगवान् जिनेंद्रदेव ने पाँचवे गुणस्थान का नाम विरताविरत बतलाया है। तथा उसमें औपशमिक क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव होते हैं।

विरताविरत का अर्थ

जो तसवहाउ विरओ णो विरओ तह य थावरवहाओ।
एक्क समयम्मि जीवो विरयाविरत्ति जिणु कहई।। (351)

अर्थ : जो जीव त्रस जीवों की हिंसा त्याग कर देता है और स्थावर जीवों की हिंसा का त्याग नहीं करता वह जीव ही एक समय में विरत और अविरत या विरताविरत कहलाता है ऐसा भगवान् जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

इलयाइथावराणं अत्थिपवित्तित्ति विरदि इयराणं।
मूलगुणठ्ठ पउत्तो बारह वयभूसिओ हु देसजइ।।(352)

अर्थ: पाँचवे गुणस्थान में रहने वाले विरताविरत जीवों की प्रवृत्ति पृथ्वी जल अग्नि वायु वनस्पति आदि स्थावर जीवों के घात करने में होती है इसलिये वह इन स्थावर जीवों के घात का त्याग नहीं कर सकता शेष त्रस जीवों के घात का त्याग कर देता है इसलिये एक देशविरत अथवा विरताविरत श्रावक कहलाता है वह श्रावक आठों मूलगुणों को धारण करता है और बारह व्रतों से विभूषित रहता है। मद्य का त्याग, मांस का त्याग, शहद का त्याग, रात्रिभोजन का त्याग, वडफल, पीपलफल, गूलर, पाकर फल, अंजीर फल इन पांचों उद्‌बरों का त्याग, प्रतिदिन, प्रातःकाल पंच परमेष्ठि को नमस्कार करना, जीवों की दया पालन करना और पानी छान कर पीना ये आठ मूलगुण कहते हैं। श्रावकों के लिए इनका पालन करना अत्यावश्यक है।

बारह व्रतों का स्वरूप

हिंसाविरई सच्चं अदत्तपरिवज्जणं च थूलवयं।

परमहिलापरिहारो परिमाणं परिग्गहस्सेव।। (353)

अर्थ : त्रस जीवों की हिंसा का त्याग करना, सत्य बोलना, बिना दिये हुए पदार्थ को कभी ग्रहण न करना, परस्त्री सेवन त्याग और परिग्रह का परिमाण करना ये पाँच अणुव्रत कहलाते हैं।

दिसिविदिसि पच्चखाणं अणत्थदंडाण होइ परिहारो।

भो ओपभोयसंखा ए एह गुणव्वया तिण्णि।। (354)

अर्थ : दिशा विदिशाओं में आने जाने का नियम धारण कर उनकी सीमा नियम कर शेष दिशा विदिशा में आने जाने का त्याग करना, पाँचों अनर्थ दंडों का त्याग करना, भोगोपभोग पदार्थों की संख्या नियत कर शेष भोगोपभोग पदार्थों का त्याग कर देना ये तीन गुणव्रत कहलाते हैं।

भावार्थ : चार दिशाएँ, चार विदिशाएँ, ऊपर नीचे ये दश दिशाएँ कहलाती हैं इनकी सीमा की मर्यादा नियतकर उसके बाहर नहीं जाना चाहिए। पाप रूप कार्यों का उपदेश देना, हिंसा करने के उपकरणों का दान देना, दूसरे का बुरा चिंतन करना मिथ्याशास्त्रों का पढ़ना सुनना और पंच स्थावरों की व्यर्थ हिंसा करना ये पाँच अनर्थ दंड कहलाते हैं। इनमें पाप तो अधिक लगता है परंतु लाभ कुछ नहीं होता। ऐसे इन अनर्थ दंडों का त्याग कर देना चाहिये। जो एक बार काम में आवे ऐसे भोजनादिक भोग है और जो बार बार काम आवे ऐसे वस्त्रादिक उपभोग है। इन सब की संख्या नियत कर लेनी चाहिए। ये तीन गुणव्रत कहलाते, हैं। इनसे अणुव्रतों के गुण बढ़ते हैं इसलिये इनको गुणव्रत कहते हैं।

देवे थुवइ तियाले पव्वे पव्वे सुपोसहोवासं।

अतिहीण संविभागो मरणंते कुणइ सल्लिहणं।। (355)

अर्थ : प्रातःकाल मध्याह्न काल संध्याकाल इन तीनों समय में परमेष्ठी की, स्तुति करना, प्रत्येक महीनें की दो अष्टमी दो चतुर्दशी इन चारों पर्वों में प्रोषधोपवास करना, प्रतिदिन अतिथियों को दान देना और सल्लेखना धारण करना ये चार शिक्षाव्रत कहलाते है। इस प्रकार पाँच अणुव्रत तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ये बारह

अणुव्रत कहलाते हैं। देशव्रती श्रावक को आठ मूलगुण और ये बारह व्रत अवश्य धारण करने चाहिये। इन बारह व्रतों को उत्तरगुण भी कहते हैं।

मित्र कलत्रे विभवे सौख्ये तनुजे गृहे यत्र विहाय मोहं।

संस्मर्यते पंचपदं स्वचित्ते सल्लेखना सा विहिता मुनीन्द्रैः।।

अर्थ : मित्र स्त्री विभूति पुत्र सुख गृह आदि सबसे मोहका त्याग कर अपने हृदय में पंच परमेष्ठी का स्मरण करना सल्लेखना है। ऐसा भगवान् जिनेंद्र ने कहा है।

मूलगुण

महुमज्जमंस विरई चाओ पुण उयंबराण पंचण्हं।

अट्ठेदे मूलगुणा हवंति फुडु देश विरयम्मि।। (356)

अर्थ : मद्य, मांस, मधु का त्याग और पाँच उदंबरों का त्याग ये देशविरतियों के आठ मूलगुण कहलाते हैं।

इस गुणस्थान में होने वाले ध्यान

अट्टरउद्दं झाणं भद्दं अत्थित्ति तम्हि गुणठाणे।

बहु आरंभपरिग्गह जुत्तस्स य णत्थि तं धम्मं।। (357)

अर्थ : इस पाँचवें गुणस्थान में आर्त्तध्यान रौद्रध्यान और भद्रध्यान ये तीन प्रकार के ध्यान होते हैं। इस गुणस्थान वाले जीव के बहुत सा आरंभ होता है और बहुत सा ही परिग्रह होता है इसलिये इस गुणस्थान में धर्मध्यान नहीं होता।

धम्मेदएण जीवो असुहं परिचियइ सुहगई लेई।

कालेण सुक्ख मिल्लइ इंदियवलकारणं जाणि।। (358)

अर्थ : धर्म सेवन करने से इस जीव के अशुभ परिणाम और अशुभ गतियाँ आदि नष्ट हो जाती है और शुभ गति प्राप्त होती है। तथा समयानुसार इन्द्रियों को बल देने वाला सुख प्राप्त होता है।

आर्तध्यान

इट्ठविओए अट्टं उप्पजइ तह अणिट्ठसंजोए।

रोयपकोवे तइयं णियाण करणे चउत्थं तु।। (359)

अर्थ : किसी इष्ट पदार्थ के वियोग होने पर उसके संयोग का चिंतवन करना पहला आर्तध्यान है। किसी अनिष्ट पदार्थ के संयोग होने पर उसके वियोग होने का

बार बार चिंतवन करना दूसरा आर्तध्यान है। किसी रोग के प्रकोप होने पर उसको दूर करने के लिए बार बार चिंतवन करना तीसरा आर्तध्यान है और निदान करना चौथा आर्तध्यान कहलाता है।

अट्टज्झाणपउत्तो बंधइ पावं णिरंतरं जीवो।
मरिएण य तिरियगई कोवि णरो जाइ तज्झाणे।। (360)

अर्थ : इस आर्तध्यान के करने से यह जीव निरंतर पाप कर्मों का बंध करता रहता है तथा कोई कोई मनुष्य इस आर्तध्यान के करने से तिर्यच गति को प्राप्त करता है।

रुद्दं कसाय सहियं जीवो संभवइ हिंसयाणंदं।
मोसाणंदं विदियं थेयाणंदं पुणो तइयं ।। 361 ।।
हवइ चउत्थं झाणं रुद्दं णामेण रक्खणाणंदं।
जस्स य माहप्पेण य णरयगई भायणो जीवो।।362।।

अर्थ : जिस जीव की कषायें अत्यन्त तीव्र होती है उसके रौद्रध्यान होता है। उस रौद्रध्यान के चार भेद हैं। हिंसा में आनंद मानना हिसानन्द रौद्रध्यान है। झूठ बोलने में आनंद मानना मृषानंद आर्तध्यान है। चोरी में आनन्द मानना स्तेयानंद नामक तीसरा अर्तध्यान है तथा बहुत से परिग्रह की रक्षा में आनंद मानना रक्षणानंद का परिग्रहानंद नाम का चौथा आर्तध्यान है। इस रौद्रध्यान का चिंतवन करने से वह जीव नरक का पात्र होता है।

जिनेज्या पात्रदानादिस्तत्र कालोचितो विधिः।
भद्रध्यानं स्मृतं तद्धि गृहवधर्माश्रयात् वुधैः।।

अर्थ : भगवान जिनेंद्रदेव की पूजा करना, पात्रदान देना तथा समयानुसार पूजा और दान की विधि करना भद्रध्यान कहलाता है। ऐसा ध्यान यथोचित गृहस्थ धर्म में ही होता है। इसलिये विद्वान लोग इसे धर्मध्यान कहते हैं।

गिहवावाररयाणं गेहीणं इंदियत्थ परिकलियं।
अट्टज्झाण जायइ रुद्दं वा मोहछण्णाणं।। (363)

अर्थ : जो गृहस्थ घर के व्यापार में लगे रहते हैं और इन्द्रियों के विषयभूतपदार्थों में संकल्प विकल्प करते रहते हैं उनके आर्तध्यान होता है तथा जिनके मोहनीय कर्म का तीव्र उदय होता है उनके रौद्रध्यान होता है।

झाणेहि तेहिं पावं उप्पण्णं तं खवइ भद्दझाणेण।
जीवो उवसमत्तुत्तो देसजई णाणसंपण्णो।। (364)

अर्थ : इन आर्तध्यान और रौद्रध्यान से जो पाप उत्पन्न होता है उसको यह उपशम परिणामों को धारण करने वाला और सम्यग्ज्ञान का धारण करने वाला देशव्रती श्रावक अपने भद्रध्यान से नाश कर देता है।

भद्रध्यान

भद्दस्य लक्खणं पुण धम्मं चिंतेइ भोयपरिमुक्को।
चिंतिय धम्मं सेवइ पुणरवि भोए जहिच्छाए।। (365)

अर्थ : जो जीव भोगों का त्याग करता धर्म का चितवन करता है और धर्म का चिंतवन करता हुआ भी फिर भी अपनी इच्छानुसार भोगों का सेवन करता उसके भद्रध्यान समझना चाहिये।

भावार्थ : भोगों का सेवन करता हुआ भी जो धर्मध्यान धारण करता है उसे भद्रध्यान समझना चाहिये।

शंका : धर्मध्यान का क्या फल है ?

समाधान : अक्षपक जीवों को देव पर्याय संबंधी विपुल सुख मिलना उसका फल है और गुण श्रेणी में कर्मों की निर्जरा होना भी उसका फल हैं, तभी क्षपक जीवों के तो असंख्यात गुणश्रेणी रूप से कर्मप्रदेशों की निर्जरा होना और शुभ कार्मों के उत्कृष्ट अनुभाग का होना उसका फल है। अतएव जो धर्म से अनुप्रेत है वह धर्मध्यान है यह बात सिद्ध होती है।

इस विषय में गाथाएँ-

उत्कृष्ट धर्मध्यान के शुभ आस्रव संवर निर्जरा और देवों के सुख में शुभानुबन्धी विपुल फल होते हैं। अथवा जैसे मेघपटल ताड़ित होकर क्षण मात्र में विलिन हो जाते हैं। वैसे ही ध्यान रूपी पवन से उपहत होकर कर्ममेघ भी विलीन हो जाते हैं।। (ध.पु. 5 पु. 77)

मोह सव्वुवसग्गो पुण धम्मज्झाण फलं सकसायत्तणेण धम्मज्झाणिणो सुहम सांपराइयस्स चरिम समए मोहणीयस्स सव्ववसमुवलभादो तिण्णं घदि कम्माणं णिम्मूल विणास फलमें पयत्तविदक्क अविचारज्झाणं मोहणीय विणासो

पुण धम्मज्झाण फलं सुहमं सापंराय चरिम समए तस्स तिणासुवलंभादो।

अर्थ : मोह का सर्वोपशम करना धर्म का फल है क्योंकि कषाय सहित धर्मध्यानी के सूक्ष्म एवं सांपराय गुणस्थान के अंतिम समय में मोहनीय कर्म की सर्वोपशमना देखी जाती है। तीन घाती कर्मों का निर्मूल विनाश करना एकत्व वितर्क अविचार ध्यान का फल हैं। परंतु मोहनीय का विनाश करना धर्मध्यान का फल है, क्योंकि सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान के अंतिम समय में उसका विनाश देखा जाता है। (ध.पु.पृ. 81)

प्राथमिकानां चिन्तामिति करणार्थ विषय दुर्ध्यान वचनार्थ च परंपरया मुक्ति कारणमर्हदादि पद द्रव्यं ध्येयम् पश्चात्चित्ते स्थिरी भूते साक्षान्मुक्ति कारणं स्वशुद्धात्मत्वतमेव ध्येयं नास्तेकांतः एवं साध्य साधक भावं ज्ञात्वा ध्येय विषये विवादो न कर्तव्यः इति।। (परमात्म प्रकाश अध्याय 2, गाहाटिका 33, ब्रह्मदेव)

अर्थ : ध्यान के प्राथमिक साधकों को चित्त के स्थिर करने के लिये और विषय कषाय स्वरूप दुर्ध्यान से बचने के लिए परंपरा मुक्ति के कारण स्वरूप अरिहन्तादि ध्यान करने योग्य है। अर्थात् ध्येय है। पश्चात् चित्त स्थिर होने पर साक्षात् मुक्ति का कारण जो निज शुद्धात्म तत्व है वही ध्यावने योग्य हैं। पर द्रव्य होने से अरिहन्तादि ध्यावने योग्य नहीं है, यह एकान्त से ठीक नहीं है। अतः सविकल्प अवस्था में अरिहन्तादि उपादेय ही है। इस प्रकार साध्य-साधन जानकार ध्यावने योग्य वस्तु में विवाद नहीं करना। पंचपरमेष्ठि का ध्यान साधक हैं, और आत्म ध्यान साध्य है यह निःसंदेह जानना।

वैयावृत्यादि स्वकीयावस्था योग्यो धर्मकार्ये नेच्छति तदातस्य सम्यक्त्वमेव नास्तीति।। (टीका प्रवचनसार)

अर्थ : वैयावृत्य आदि अपनी अवस्था के योग्य धर्म कार्य की अपेक्षा से नहीं चाहता है उसका तब से सम्यग्दर्शन ही नहीं है। मुनि व श्रावकपना तो दूर ही रहा है।

यद्यपि व्यवहार नयेन गृहस्थावस्थायां विषय कषाय दुर्ध्यान वंचनार्थ धर्मवर्धनार्थच पूजाभिषेक दानादि व्यवहारोऽस्ति तथपि वीतराग निर्विकल्प समाधिरतानोतत्काले बहिरंग व्यापाराभावात् स्वमेव नास्तीति।

अर्थ : यद्यपि व्यवहार नय कर गृहस्थ अवस्था में विषय कषाय रूप खोटे ध्यान को हटाने के लिये और धर्म बढ़ाने के लिए पूजा अभिषेक दान आदि का व्यवहार है, तो भी वीतराग निर्विकल्प समाधि में लीन हुए योगीश्वरों को उस समय में बाह्य व्यापार के अभाव होने से स्वयं ही द्रव्य पूजा का प्रसंग नहीं आता भाव पूजा में ही तन्मय है। (टीका परमात्म प्रकाश)

शुद्धात्मानुभूति :-

सम्यग्दृष्टि जनः पुनरभेदरत्नत्रय लक्षण निर्विकल्प समाधिवलेन कतकफल स्थानीयं निश्चय न्याश्रित्य शुद्धात्मानमनुभवतीत्यर्थ।। (स.सा.ता. वृ.)

अर्थ : जो सम्यग्दृष्टि जन होता है वह तो अभेद रत्नत्रय लक्षण निर्विकल्प समाधि के बल से कतक स्थानिक निश्चय नय का आश्रय लेकर शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है।

ननु-वीतराग संवेदन विचार काले वीतराग विशेषणं किमिति क्रियते प्रचुरेण भवद्भिः किं सरागमपि स्वसंवेदन ज्ञानमस्तीति?

अत्रोत्तरं विषय सुखानुभवानन्द रूप स्वयंवेदन ज्ञनं सर्वजन प्रसिद्धं सरागमप्यस्ति शुद्धात्मसुखानुभूतिरूप संवेदनज्ञानं वीतरागमिति। इदं व्याख्यानं स्वसंवेदन ज्ञान व्याख्यान काले सर्वत्रं ज्ञातव्यमिति।

(स. सा. ता वृ 103)

शंका : वीतराग संवेदन विचार काल में आप ने जो बार-बार वीतराग विशेषण दिया है वह क्यों देते आ रहे हैं क्या कोई सराग स्वसंवेदन ज्ञान भी होता है?

समाधान : इसके उत्तर में आचार्य उत्तर देते हैं कि भाई विषय सुखानुभव के आनंन्द रूप स्वसंवेदन होता है वह सर्वजन प्रसिद्धि है। अर्थात् वह सब लोगों के अनुभव में आया करता है, वह सराग होता है किन्तु जो शुद्धात्मा के सुखानुभव रूप स्वसंवेदन ज्ञान होता है वह वीतराग होता है। इसी प्रकार स्वसंवेदन ज्ञान के व्याख्यान काल में सभी स्थान पर समझना चाहिये।

विषय कषाय निमित्तोत्पन्नेनार्त्तरौद्रध्यानद्वयेन परिणतानां गृहस्थानामात्माश्रित निश्चयधर्मस्यासवकाशो नास्ति ।। (प्र. सा. ता. वृ)

विषय कषाय के निमित्त से उत्पन्न आर्त्त-रौद्र ध्यानों में परिणत गृहस्थ जनों को

आत्माश्रित निश्चय धर्म का अवकाश नहीं है।

असंयत सम्यग्दृष्टि श्रावक प्रमत्त संयतेषु पारम्पर्येण शुद्धोपयोग साधक उपर्युपरि तारतम्येन शुभोपयोग वर्तते तदनन्तरमप्रनत्तादि क्षीण कषायपर्यंतजघन्य मध्यमोत्कृष्ट भेदेन विवक्षितेकदेश शुद्धनय रूप शुद्धोपयोग वर्तते।। (द्र. सं.टी. 38)

असंयत सम्यग्दृष्टि से प्रमत्त तक तीनों गुणस्थानों में परम्परा से शुद्धोपयोग का साधक ऐसे उत्तरोत्तर विशुद्ध शुभोपयोग वर्तता है और उसके अनन्तर अप्रमत्तादि क्षीण कषाय के गुणस्थानों में जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद को लिये विवक्षित एक देश शुद्ध नय रूप शुद्धोपयोग वर्तता है।

ये गृहस्थापि सन्तो मनागात्मभावनामासाद्य वयं ध्यानिन इति बृवंते ते जिनधर्म विराधकः मिथ्यादृष्टयो ज्ञातव्याः।

जो गृहस्थ होते हुए भी मनाक् (थोड़ा) आत्म भावना को प्राप्त करके हम ध्यानी हैं ऐसा कहते हैं वे जिन धर्म विराधक मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए।**(मो.पा.)**

खनन औद्योगिक गतिविधि से उत्पन्न समस्या

जल संसाधन मंत्रालय ने लोकसभा में दी जानकारी...

देश में 24 करोड़ लोग आर्सेनिक युक्त दूषित पानी पीने को मजबूर

सबसे ज्यादा 7 करोड़ आबादी प्रभावित है यूपी की

नई दिल्ली भारत के 21 राज्यों के 153 जिलों में रहने वाले करीब 24 करोड लोग (यानी देश की कुल आबादी की करीब 19 फीसदी आबादी) खतरनाक आर्सेनिक स्तर वाला पानी पीते हैं। प्रतिशत के हिसाब से देखा जाए तो सबसे ज्यादा असम की 65 प्रतिशत आबादी आर्सेनिक दूषित पानी पीती है जबकि पश्चिम बंगाल और बिहार में ये आंकड़े 44 और 60 फिसदी है। ये आंकड़ा एक सवाल के जवाब में संसाधन मंत्रालय ने लोगसभा को बताया है। आंकड़ों के मुताबिक आबादी के लिहाज में सबसे अधिक प्रभावित राज्य उत्तर प्रदेश है, जहां, सात करोड़ आबादी ये

जहरीला पानी पीने को मजबूर हैं।

त्वचा कैंसर हो सकता है

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने चेतावनी दी है कि लंबे समय तक आर्सेनिक युक्त पानी पीने से आर्सेनिकोसिस हो सकता हैं। इसके अलावा त्वचा का कैंसर, गाल ब्लैंडर, किडनी या फेफड़ों से संबंधित बीमारियां हो सकती है। डायबिटीज व हाइपरटेंशन भी हो सकता है।

इन राज्यों में दूषित पानी नहीं

महाराष्ट्र, केरल, उत्तराखंड, गोवा,त्रिपुरा, और अरूणाचल प्रदेश में आर्सेनिक युक्त दूषित पानी की रिपोर्ट नहीं मिली है। ओडिशा और राजस्थान सबसे कम दूषित पानी प्रभावित राज्यों में शामिल हैं। यहां सिर्फ एक जिले में ही आर्सेनिक युक्त पानी मिला है।

ये हैं अहम वजह

खनन और औद्योगिक गतिविधियां अहम वजह है। आर्सेनिक युक्त पानी से खेतों की सिंचाई होने पर इससे तैयार भोजन करने से भी लोग प्रभावित हो सकते हैं। ऐसे पानी में पली मछलियां मीट, मुर्गी व डेयरी उत्पाद व अनाज भी शरीर में आर्सेनिक की मात्रा बढ़ा सकते हैं।

खान नियमों की अनदेखी से बढ़ता सिलिकोसिस

खान क्षेत्र में संसाधनों की कमी, वैट ड्रिलिंग लागू नहीं होने, काम के घंटों की पाबंदी, कार्य प्रणाली में सुधार नहीं होने से पुरुषों व महिलाओं की औसत आयु में कमी आई हैं। चिकित्सक सिलिकोसिस का इलाज टी.बी. मानकर करते हैं।

राष्ट्रीय खनिज स्वास्थ्य संस्था की रिपोर्ट के अनुसार पूरे भारत के खनिज क्षेत्रों में सिलिकोसिस के मरीज बढ़ते जा रहे हैं। सिलिकोसिस फेफड़ों में होने वाला जानलेवा रोग हैं। पत्थर की खानों, पत्थर की कटाई, पिसाई, सड़क व भवन निर्माण के कार्य में लगे मजदूरों में सिलिका धूल के कणों के साथ फेफड़ों में जाने से यह रोग होता है। इस रोग की रोकथाम के संबंध में उच्चतम न्यायालय ने पीड़ितों को राहत देने, उनके पुनर्वास और वैकल्पिक व्यवसाय के संबंध में रिपोर्ट मांगी। खान क्षेत्र में संसाधनों की कमी, वैट ड्रिलिंग

लागू नहीं होने, काम के घंटों की पाबंदी, कार्य प्रणाली में सुधार नहीं होने से पुरुषों व महिलाओं की औसत आयु में कमी आई है। दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सक सिलिकोसिस की बीमारी का इलाज टी.बी. मानकर कर रहे हैं। सरकार ने इस रोग की रोकथाम के लिए कोई प्रभावशाली कार्यवाही नहीं की है और नही ऐसे पीड़ितों के लिए किसी वैकल्पिक व्यवसाय की व्यवस्था की। हैरानी की बात है कि पीड़ितों के आश्रितों से हलफनामे मांगे जा रहे है कि खानों में काम करने पर ही सिलिकोसिस का मरीज बना और मर गया। आधुनिक मशीनीकरण के अभाव में खदानों में हाथ से काम होता है। अधिकतकर खनिज क्षेत्र में न तो औद्योगिक इकाईयां और न ही उपजाऊ जमीन होती है जिससे अधिकाशं श्रमिक पत्थर माईनिंग पर ही निर्भर हैं। हमारे देश की खदानों की कार्य प्रणाली में खामियां ही खामियां है। खनिज एवं श्रम नियम उन पर लागू नहीं हैं। अनेक खदानों में प्रोग्रेसिव मेसिव फाईब्रोसिस जो कि रोग की एडवासं स्टेज है पाया गया है। जिम्मेदारी से बचने के लिए अनपढ़ श्रमिकों में यह गलत धारणा बनाई जाती है कि मैन्यूअल पत्थर खदान में कार्य करने से सिलिकोसिस नहीं होता। रोग की रोकथाम के संबंध में गंभीरता से वैज्ञानिक अध्ययन के प्रयास प्रारम्भ नहीं हुए। बीमारों एवं मृतकों को समय पर राहत राशि नहीं मिलती। यह रोग माइनिंग क्षेत्र में संक्रमण की तरह फैल रहा है। मजदूरों की सुरक्षा और स्वास्थ्य संबंधी अधिनियम लागू नहीं होने से स्थिति दिन-ब-दिन चिंताजनक बनती जा रही है। ऐसे क्षेत्रों में प्रशिक्षित डाक्टर व विशेषज्ञ उपलब्ध नहीं है। रोग के इलाज हेतु शहर के अस्पताल ले जाना पड़ता है। यहां भी चिकित्सक को सिलिकोसिस रोग निवारण हेतु विशेष प्रशिक्षण मिलना प्रारम्भ नहीं हुआ है और न ही सरकार द्वारा कोई विस्तृत अध्ययन प्रारम्भ हुआ हैं। खान मालिकों की स्थिति यह है कि वे आवंटित खान पर स्वयं कार्य नहीं करते और श्रमिकों की पीड़ा सुनने वाला कोई नहीं है।

मैं ही मेरा सर्वस्व, अन्य सभी परतत्त्व

(स्व के अतिरिक्त अन्य में आसक्ति से होते समस्त पाप)

- आचार्य कनकनदी

(चालः- भातुकली...)

मेरा आत्मा ही मेरा सर्वस्व, मेरे आत्मा बिना सब (परतत्त्व)/(परद्रव्य) ।।
इसलिए मैं अन्य से परे होकर, बन रहा हूँ स्वतंत्र ।। (ध्रुव)

मैं हूँ जीव द्रव्य सच्चिदानन्दमय, अनादिअनिधन स्वतंत्र।
स्वयंभू स्वयंपूर्ण अनन्तगुण युक्त, परमानन्दज्ञानयुक्त।।
सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-डिग्री, ये तो अत्यन्त बाह्य तत्त्व।
तन-मन-अक्ष-राग-द्वेष-मोहादि भी मुझ से बाह्य तत्त्व।। (1)

ऐसा ही मेरा स्व-स्वरूप तो शत्रु-मित्रादि कैसे मेरे तत्त्व। ?
अतएव मैं क्यों करूँ ? राग-द्वेष, जो मुझ से हैं भिन्न तत्त्व।।
परतत्त्व हेतु यदि करूँ राग-द्वेष तो, यह होगी परम हिंसा।
परम तत्त्व को मेरा मानूँ तो, होंगे झूठ-चोरी-कुशील-परिग्रह।। (2)

तथाहि क्रोध-मान-माया-लोभ होंगे, जिससे होंगे अक्षमादिभाव।
मद-कुटिलता व अशौच-असंयम-अत्याग-अतपादि भाव।।
तथाहि होंगे सप्त व्यसन व, ईर्ष्या,-तृष्णा-घृणादि भाव।
संकल्प-विकल्प व संक्लेश होगें, जिससे नशेगा मेरा सर्वस्व।। (3)

अतएव मैं स्वयं को चाहूँ, स्वयं को ही करुँ स्वीकार।
अन्य सभी पर तत्त्व से स्वतंत्र बनूँ, 'कनक' का परमसार। (समयसार)

ओबरी 29.12.2017 रात्रि 09:50

आत्मस्थिरता की आवश्यकता

परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखम्।
अत एव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः।। (45) इष्टो.

[illegible]

पर देह धनादि पर ही है। उसे कभी भी आत्मा का, स्वयं का नहीं कर सकते हैं। इसलिए उसमें आत्मा का आरोपण करना दुखों को निमंत्रण देना है। क्योंकि वे पर

द्रव्य दुःखों के द्वार है, दुःखों के निमित्त है। उसी प्रकार आत्मा आत्मा का ही है। उसे कभी भी देहादि रूप में परिणमन नहीं कर सकते हैं अथवा आत्मा देहादि का उपादान नहीं है। इसलिए आत्मा से सुख है, दुःख के निमित्त उसके अविषय है। इसके लिए ही तीर्थंकरादि महात्मा आत्मा के निमित्त तपानुष्ठान रूपी उद्योग किया है।

समीक्षा – आचार्य श्री ने इस श्लोक में सुख का आधार तथा उसे प्राप्त करने का संक्षिप्त किन्तु सार गर्भित उपाय बताया है। उन्होंने यह बताया कि दुःख आत्मा का स्वरूप नहीं है तथा सुख दुसरों से प्राप्त नहीं होता है वरन् दुःख पर का स्वभाव है तथा सुख स्व-स्वभाव है। जो सुख के लिए दूसरों को अनात्म स्वरूप को अपनाता वह सुख के परिवर्तन में दुःखों को गले लगाता है। इसके विपरीत जो पर संयोग को त्याग करके आत्मा का ही आश्रय लेता है आलम्बन लेता है वह सुख को प्राप्त करता है। इसका रहस्य यह है कि शुद्ध, स्वतंत्र आत्मा का स्वरूप ही अक्षय अनन्त सुख स्वरूप है तथा शरीरादि पौद्गलिक द्रव्य है, जिसमें सुख का सर्वथा अभाव है। उसको स्वीकार रूप में जो मोह, राग है वह दुःख के निमित्त है। क्योंकि उसके कारण जो कर्म बन्ध होता है, उससे आत्मा परतंत्र हो जाता है और सुखादि गुण भी दुःख रूप में परिणमन कर लेते हैं परन्तु भेद विज्ञान तथा भेद्र क्रिया रूप वीतराग चारित्र से पर सम्बन्ध रूप बन्धन कट जाता है। तब आत्मा के सुखादि गुण प्रगट हो जाते हैं। इसे ही स्वतंत्रता/निःसंगत्व/स्वाधीन मोक्ष कहते हैं। कहा भी है-

पक्खीणघादिकम्मो अणंतवरवीरिओ अधिकतेजो।
जादो अणिंदिओ सो णाणं सोक्खं च परिमणदि।। (19)।।

[illegible]

इस व्याख्यान में यह कहा है कि आत्मा यद्यपि निश्चय से अनंतज्ञान और अनंतसुख के स्वभाव को रखने वाला है तो भी व्यवहार से संसार की अवस्थान में पड़ा हुआ है, जब इसका केवलज्ञान और अनंतसुख स्वभाव कर्मों से ढ़का हुआ है, तब तक पांच इन्द्रियों के आधार से कुछ अल्पज्ञान व कुछ अल्पसुख में परिणमन करता है। फिर जब कभी विकल्प रहित स्वसंवेदन या निश्चल आत्मानुभव के बल से कर्मों का अभाव होता है, तब क्षयोपशम ज्ञान के अभाव होने पर इन्द्रियों के व्यापार

नहीं होते हैं, उस समय अपने ही अतीन्द्रिय ज्ञान और सुख को अनुभव करता है, क्योंकि स्वभाव के प्रगट होने में पर की अपेक्षा नहीं है, ऐसा अभिप्राय है।

स्वभावतः प्रत्येक जीव अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्यादि अनंत गुणों का अखण्ड पिण्ड है तथापि कर्मों के आवरण के कारण वे गुण आत्मा में ही सुप्तरूप में छिपे हुए है। कुन्दकुन्द देव ने समयसार में कहा भी है-

सो सव्वणाणदरसी कम्मरयेण णियेणवच्छण्णो।
संसारसमावण्णो णवि जाणदि सव्वदो सव्वं।। (67)

यह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जीव कर्मरज से आवृत होकर संसार में पतित हुआ है और सर्वदा सबको नहीं जानता है परन्तु जब वही कर्मरज रूपी आवरण हट जाता है तब वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनंतसुख एवं अनंतवीर्य सम्पन्न बन जाता है। इसलिए वस्तुतः ज्ञान या सुख पर से प्राप्त नहीं होता है परन्तु सहज आत्मोत्थ है।

प्रशान्तमसं हयेनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकलमषम्।। (27 गीता)

जिसका मन भलीभांति शांत हुआ है, जिसके विकार शांत हो गये हैं, ऐसा ब्रह्ममय हुआ निष्पाप योगी अवश्य उत्तम सुख प्राप्त करता है।

युञ्जत्रेवं सदात्मानं योगी विगतकलमषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते।। (28)

आत्मा के साथ निरन्तर अनुसंधान करते हुए पाप - रहित हुआ यह योगी सरलता से ब्रह्मप्राप्ति-रूप अनंत सुख का अनुभव करता है।

सामग्री विशेष विश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम्। (11)
(प्रमेयरत्नमाला)

सामग्री की विशेषता से दूर हो गये हैं समस्त आवरण जिसके ऐसे अतीन्द्रिय और पूर्णतया विशद ज्ञान को मुख्य प्रत्यक्ष कहते हैं।

ऐश्वर्यमप्रतिहतं सहजो विरागस्तृप्तिर्निसर्गअनिता वशितेन्द्रियेषु।
आत्यान्तिकं सुखमनावरणा च शक्ति र्ज्ञानं च सर्वविषयं भगवस्तथैवा।।

तथा सन्यासियों के गुरु अवधूत के भी वचन उसके विषय में इस प्रकार है- ''हे भगवान्! आपका ऐश्वर्य अप्रतिहत (अखण्ड) है, वैराग्य स्वाभाविक है, तृप्ति

नैसर्गिक है, इन्द्रियों में वशिता है अर्थात् आप जितेन्द्रिय हैं, आपका सुख आत्यन्तिक अर्थात चरम सीमा को प्राप्त है, शक्ति आवरण रहित है और सर्व विषयों को साक्षात् करने वाला ज्ञान भी आपका ही है।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरमृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः(पातंञ्जली योगदर्शन 34 पृ. 174)

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेशरूप क्लेशों से, शुभाशुभ कृतियों से जन्य पुण्य पाप रूप कर्मों से, पुण्य-पाप के फल-जाति, आयु तथा भोग प्रतिनिधि सुख-दुख रूप विपाक से और सुख-दुखात्मक भोग से जन्य विविध वासनाओं से अस्पृष्टः जीवरूप अन्य पुरुषों से विशिष्ट चेतन ईश्वर है।

सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च। (49)

पुरुष (आत्मा) एवं प्रकृति (कर्म) के भेदज्ञान से सम्पन्न योगी को सम्पूर्ण पदार्थों के अधिष्ठातृत्व का (अर्थात सम्पूर्ण पदार्थों को नियन्त्रित करने के सामर्थ्य का) और समस्त पदार्थों के ज्ञातृत्व का (अर्थात सम्पूर्ण पदार्थों को ठीक-ठीक जान लेने की शक्ति का) लाभ होता है।

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्। (50)

विवेक ख्याति की निष्ठा द्वारा, विवेकख्यातिजन्य सिद्धिविषयक परम वैराग्य की प्राप्ति हो जाने से, पर - वैराग्य जन्य असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा, रागादि दोषों के मूल कारण अविद्या के समाप्त हो जाने पर योगी पुरुष को कैवल्य भी प्राप्त हो जाता है।

सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्। (55)

बुद्धि एवं पुरुष की शुद्धि के समान रूप से हो जाने पर मोक्ष हो जाता है।

जिघच्छापरमारोगा, संखारा परमा दुखा।
एवं ञत्वा यथाभूतं निब्बानं परमं सुखं।। (धम्मप) नं.)

भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़ा दुःख है, इसे यथार्थ (रूप से) जानकर निर्वाण सबसे बड़ा सुख हैं।

राग का फल

अविद्वान्पुद्गलद्रव्यं योऽभिनंदति तस्य तत्।
न जातु जंतोः सामीप्यं, चतुर्गतिषु मुञ्चति।। (46)

[illegible]

वर्तमान में पर द्रव्य में अनुराग रखना दोषकारक है इसे प्रदर्शित करते हैं। जो हेय उपादेय तत्व में अनभिज्ञ है ऐसे अविद्वान देहादिक पुद्गल द्रव्य को स्व आत्मा स्वरूप से श्रद्धान करता है, अभिनन्दन करता है तब उस जीव को नरकादि गति को प्राप्त कराने योग्य पुद्गल द्रव्य उसका सामीप्य नहीं छोड़ता है।

समीक्षा :- यहाँ पर आचार्य श्री ने नाटकीय एवम् साहित्यिक पद्धति से कर्म सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। कर्म सिद्धान्त के अनुसार जीव मोही होकर अज्ञान भाव से राग-द्वेष से प्रेरित होकर कर्म का आस्रव करता है और बन्ध करता है और वह कर्म प्रकृति, स्थिति, अनुभाग एवं प्रदेश रूप में बंधकर जीव के साथ रहता है और विभिन्न प्रकार के सुख-दुख को देता रहता है। जब तक जीव को वह फल नहीं देता है तब तक वह जीव से पृथक नहीं होता है। इस अवस्था को स्थिति बन्ध कहते हैं। स्थिति बंध पूर्ण होने के बाद जब कर्म फल देता है उसे उदय कहते हैं।

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेय विहं।
मं सवसारूहिरादिभावे उदयरग्गि संजुत्तो।।

जैसे पुरुष द्वारा ग्रहण किया गया आहार उदराग्नि से युक्त हुआ, अनेक प्रकार मांस, रूधिर आदि भावों के रूप परिणमता है, उसी प्रकार कर्म पुद्गल भी जीवों के रागादि भावों को प्राप्त करके 8 प्रकार अथवा अनेक प्रकार दैव रूप में परिणमन करता है।

भोजन से पहले खाद्य सामग्री, रोटी, भात, दाल आदि रूप में रहती है। भोजन करने से वही खाद्य सामग्री खाने वाले के चर्वण, लार पाचन शक्ति आदि के निमित्त से रस, रूधिर, मांस, मेद (चर्बी), अस्थि मज्जा, वीर्य, ओज आदि रूप परिणमन हो जाती है। इसी प्रकार कर्मवर्गणा जब तक जीव के योग और उपयोग का निमित्त प्राप्त करके आस्रव एवं बन्धरूप परिणमन नहीं करता है तब तक वह वर्गणा केवल भौतिक पुद्गल स्वरूप ही रहती है। जीव के योग्य एवं उपयोग को प्राप्त करके वही कर्मवर्गणा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय आदि कर्मरूप से परिणमन कर लेती है। जीव के योग एव उपयोग को प्राप्त करने से पहले कर्मवर्गणा जड़ रूप में रहती है

एवं योग उपयोग रूपी जीव के शुभाशुभ निमित्त को प्राप्त करके दैव रूप में परिणमन कर लेती है। इससे सिद्ध होता है कि दैव भी पुरुषार्थ से जयमान उत्पन्न है। जैसे अण्डा से पक्षी। उसी प्रकार शुभाशुभ पुरुषार्थ भी पूर्वार्जित दैव के कारण होता है। इसलिये कर्थाञ्चित पुरुषार्थ भी देव से जायमान है। जैसे अण्डा से पक्षी जायमान है और पक्षी से अण्डा जायमान है। जैसे बीज से वृक्ष एवं वृक्ष से बीज उत्पन्न होता है, उसी प्रकार कथञ्वित् कर्म (दैव) से पुरुषार्थ एवं पुरुषार्थ से कर्म उत्पन्न होता है। अभव्य जीव के दैव एवं पुरुषार्थ की परम्परा अनादि अनन्त होते हुये भी मोक्ष जाने वाले भव्यों की यह परम्परा अनादि शान्त है।

आत्मध्यान का फल-स्वरूप

आत्मानुष्ठानतिष्ठस्य, व्यवहारबहिः स्थितेः।
जायते परमानन्दः, कश्चिद्योगेन योगिनः।।(47)

ऋृज षाब त्ल इत्यन्ह ज्ल्ळाघन्त्ल्णज्छ त्फ णत्ल ब्ष्फ ल्ज्न्झ गफ्छ धज्ज्भ्ल गषह इ्ल्ब ळण्ज ष्ब्छन्ह त्फळज्च्ब्ब्ल्ज ल्भ्ज्ज्ज धत्फ्छ ब्झ णगभ्भत्फज्ल्ल त्ल भ्ब्छण्च्ज्छ त्फ ळण्ज घ्ज्त्फ्ज ब्झ ल्च्छ्ग ग हब्ज्त !

शिष्य प्रश्न करता है कि आत्मा स्वरूप में लीन रहने वालों को क्या होता है ? गुरू उत्तर देते हैं कि-

देहादि से निवृत्त होकर जो स्व आत्मा में ही लीन होकर प्रवृत्ति निवृत्ति रूप व्यवहार से दूर होकर ध्यान करता है ऐसे योगी को स्व आत्मा ध्यान से एक अनिर्वचनीय परम आनन्द उत्पन्न होता है जो आनन्द अन्य में असंभव है।

समीक्षा - प्रत्येक आत्मा अनन्त अक्षय-ज्ञान-घन या परमानंद स्वरूप है परंतु जिस प्रकार घने बादल के कारण सूर्य रश्मि प्रकट नहीं होती है उसी प्रकार घने कर्म के कारण राग द्वेष-संकल्प विकल्प के कारण वह स्वभाव लुप्त प्रायः है। तथापि जिस प्रकार बादल हटने पर, घटने पर सूर्य रश्मि प्रगट हो जाती है उसी प्रकार साधना के बल पर कर्मादि क्षीण होने पर, विलीन होने पर स्व में निहित आनन्द प्रकट हो जाता है। यह आनन्द जीव का स्वाभाविक गुण या आनन्द है। इस आनन्द को प्राप्त योगी के लिये संसार के समस्त सुख, वैभव तुच्छ प्रायः प्रतिभासित होता है, दुःख रूप में दिखाई देता है। इसे ही सच्चिदानन्द, आत्मनन्द, परमानन्द, अनंत सुख,

अलौकिक आनन्द, इन्द्रियातित आनन्द, ब्रह्मानन्द आदि नाम से अभिहित किया जाता है। इस आनन्द को ही प्राप्त करने के लिये समस्त धार्मिक विधियाँ की जाती है। बड़े-बड़े राजा, महाराजा, चक्रवर्ती आदि भी इस आनन्द को प्राप्त करने के लिए समस्त वैभव त्याग कर सर्व सन्यास लेकर ध्यान करते है। हर सम्प्रदाय के महापुरुष साधु संत इस आनन्द को प्राप्त करने के लिये साधना तथा ध्यानरत रहते हैं। हिन्दू धर्म के अनुसार महर्षि कपिल, पताञ्जली यहाँ तक कि हिंदू धर्म के सर्वश्रेष्ठ देव ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी इस आनन्द को प्राप्त करने के लिये समस्त, कार्यकलाप गतिविधियों को छोडकर ध्यान लीन रहते हैं। जैन धर्म के अनुसार शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ जो स्वयं गृहस्थावस्था में चक्रवर्ती, कामदेव थे तथा जिनके दो कल्याणक हो गए थे, और तीन ज्ञान के भी धारी थे वे भी इस परम् आनन्द को प्राप्त करने के लिये समस्त वैभव त्यागकर, साधु बनकर आत्म ध्यान में लीन हो गए।

गीता में महामानव नारायण श्री कृष्ण ने अर्जुन के लिए ध्यान का वर्णन करते हुए निम्न प्रकार विवेचन किया है-

यत्रो परमते चित्तं निरूद्धं योग सेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्चन्मात्मानि तुष्यति।।
सुखमात्यंतिकं यत्तद्बुद्धिग्राहयामतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चेवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः।।
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचारल्यते।।
तं विद्याददुःखसंयोग वियोगं योग संज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।।

योग के सेवन से अंकुश में आया हुआ मन जहाँ शांति पाता है, आत्मा से ही आत्मा को पहचानकर आत्मा में जहाँ मन संतोष पाता है और इन्द्रियों से परे और बुद्धि से ग्रहण करने योग्य अनन्त सुख का जहाँ अनुभव होता है, जहाँ रहकर मनुष्य मूल वस्तु से चलायमान नहीं होता और जिसे पाने पर दूसरे किसी लाभ को वह उससे अधिक नहीं मानता और जिसमें स्थिर हुआ महादुःख से भी डगमगाता नहीं, उस दुःख के प्रसंग से रहित स्थिति का नाम योग की स्थिति समझना चाहिए। यह योग

ऊबे बिना दृढ़ता पूर्वक साधने योग्य है।

प्रशान्तमनस हयेनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शांत रजसं ब्रह्मयुतकल्मषम्।

जिसका मन भली-भाँति शांत हुआ है जिसके विकार शांत हो गये हैं, ऐसा ब्रह्ममय हुआ निष्पाप योगी अवश्य उत्तम सुख प्राप्त करता है।

युञ्जन्नेव सदात्मानं योगी विगत कल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमनन्तं सुखमश्नुते।।

आत्मा के साथ निरन्तर अनुसंधान करते हुए पापरहित हुआ यह योगी सरलता से ब्रह्म प्राप्तिरूप अनन्त सुख का अनुभव करता है।

मेरे लक्ष्यानुसार शिक्षा व साधना हेतु

ध्यान मेरे लिए परम कर्तव्य-(आत्मध्यानी मुनि ही यथार्थ से धर्मध्यानी)

(चतुर्थ गुणस्थानवर्ती श्रावक व छट्टा गुणस्थानवर्ती मुनि भी उपचार से धर्मध्यानी)

- आचार्य कनकनंदी

(चालः- आत्मशक्ति ....)

आत्मध्यानी मुनि होते हैं धर्मध्यानी, जो राग-द्वेष-मोह से रहित हैं।
संकल्प-विकल्प संक्लेश रहित, जो होते ख्याति-पूजा-लाभ रहित।।

गाथा- **मुक्खं धम्मज्झाणं उत्तं तु पमायविरहिए ठाणे।**
देस विरए पमत्ते उवयारेणेव णायव्वं।। (371) भाव संग्रह

उत्तम क्षमादि-मार्दव-आर्जव-शौच-सत्य-संयम-तप-त्याग-सहित/(परिणत)
आंकिचन्य व ब्रह्मचर्य परिणत मुनि होते हैं धर्मध्यान युक्त।।(1)

गाथा - **दहलक्खणसंजुत्तो अहवा धम्मोत्ति वण्णिओ सुत्ते।**
चिंता जा तस्स हवे भणियं तं धम्मझाणुत्ति।। (372)

वस्तु स्वभाव धर्म होने से तथा, सभी वस्तुओ में स्व आत्मा मुख्य।

अतएव स्वशुद्धात्मा ध्यान रत मुनि, होते यथार्थ से धर्मध्यान युक्त।।
ऐसे ध्यानी मुनि को होता है, निरालम्बध्यान जो आत्मा के आश्रित।
स्व-आत्मा में /(से) स्व-आत्मा द्वारा, स्व-आत्मा का होता ध्यान है।।(2)

गाथा - **जं पुणु वि णिरालंवं त झाणं गपमाय गुणठाणे।**
चत्तगेहस्स जायइ धरियं जिणलिंगरुवस्स।(381)

संकल्प-विकल्प सहित मुनिओं को भी नहीं होता है यह धर्मध्यान।
इस ध्यान के साधन हेतु, व्रत-नियम--भावना-चिंतन-ज्ञान।।

गाथा - **जाम वियप्पो कोई जायइ जोइस्स झाण जुत्रस्स।**
ताम ण सुण्णझाणं चिंता वा भावणा अहवा।।(83) आ.सा.

ऐसे ध्यानी मुनि होते हैं श्रेष्ठ जो नहीं करते संकल्प-विकल्प।
श्रावक से ले छट्टेगुणस्थानवर्ती मुनि से भी वे होते श्रेष्ठ-ज्येष्ठ।। (3)

अठाबीस मूलगुण पालन रत जो, मुनि अभी नहीं हैं ध्यानरत।
उनसे भी अधिक श्रेष्ठ-ज्येष्ठ है, जो स्व-शुद्धात्म ध्यान रत।।
पंचपरमेष्ठीओंके वन्दन पूजन, आराधना जाप से भी (यह) ध्यान श्रेष्ठ।
वन्दन आदि स्वावलम्ब ध्यान है जो निरालम्ब ध्यान हेतु निमित्त।।(4)

गाथा - **तुं फुडु दुविहं भणियं सालंवं तह पुणो अणालंवं।**
सालंवं पंचण्हं परमेट्ठीणं सरूवं तु।। (374)

राग-द्वेष-मोह व संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्याग से होता धर्मध्यान।
एकाग्रता से जो मुनि चिन्तन करते वह होता है धर्मध्यान।।

गाथा - **मा मुज्झह मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु।**
थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्त झाणप्पसिद्धीए।।(48) द्र.स.)
जंकिंचिवि चिंततो, णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।
लध्दू णय एयत्तं तदा हुतं तस्स णिच्छयं झाणं।। (55 द्र.स.)
मा चिट्ठह मा जंपह-मा चिंतह किं वि जेण होई थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे झाणं ।। (56 द्र.सं)

इससे मुझे श्रेष्ठ शिक्षा मिले, मैं करूँ सदा सर्वश्रेष्ठ साधना।
संकल्प-विकल्प व संक्लेश जनक, त्यागूँ मैं समस्त विडम्बना।। (5)

जिसभी कारण से राग-द्वेष-मोह, ईर्ष्या-घृणा-तृष्णा होते उत्पन्न।
उन सभी कारणों को त्यागूँ जिस से (में) होती ख्याति-पूजा-लाभ भावना। (तमन्ना)
यह सब मैंने जैन हिंदू-बोद्ध-ग्रन्थों में, पढ़ा तथाहि आधुनिक विज्ञान में।
बाल काल से मेरा यह अनुभव बढ़ रहा, 'कनक' अतः दृढ़ स्व-लक्ष्य में।।(6)
ओबरी 29.12.2017 रात्रि 08.00

छठे प्रमत्त संयत गुणस्थान का लक्षण

इत्थेव तिण्णि भावा खय उव समाइ होंति गुणठाणे।
पणदह हुंति पमाया पमत्त विरओ हवे तम्हा।। (600) भाव सं.

अर्थ : इस प्रमत्त विरत नाम के गुणस्थान में औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक तीनों प्रकार के भाव होते हैं तथा पन्द्रह प्रमाद भी इसी गुण स्थान तक होते हैं। इसलिये इस गुणस्थान को प्रमत्त विरत गुणस्थान कहते हैं।

भावार्थ : यद्यपि प्रमाद सब नीचे के गुणस्थानों में ही रहते हैं परन्तु नीचे के गुणस्थानों में पापों का सर्वथा त्याग नहीं है इसलिये उन पापों के साथ प्रमाद भी रहते है। परन्तु इस छठे गुणस्थान में पापों का सर्वथा त्याग हो जाता है पंच महाव्रत धारण किये जाते हैं तथा उनके साथ प्रमाद भी रहते हैं पापों का त्याग होने पर भी प्रमादों का त्याग नहीं होता इसलिये इस गुणस्थान को प्रमत्त विरत कहते हैं।

वत्तावत्त पमाए जो णिवसइ पमत्तसंजदो होइ।
सयल गुणसील कलिओ महव्वई चित्तलायरणो।। (601)

अर्थ : जो मुनि अठ्ठाईस मूलगुणों को पालन करते हैं शील वा उत्तर गुणों को पालन करते हैं महाव्रतों का पालन करते हैं मुनि अब व्यक्त वा अव्यक्त रूप प्रमाद में निवास करते हैं। तब वे प्रमत संयत व प्रमत संयमी मुनी कहलाते हैं। ऐसे मुनियों का चारित्र अत्यंत शुद्ध नहीं होता किन्तु अनेक रंगों से बने हुए कुछ दोष उसमें लगते ही रहते हैं।

भावार्थ : प्रमाद होने से कुछ ना कुछ दोष लगते रहते हैं।

15 प्रमाद

विकहा तहय कसाया इंदियणिद्दा तहय पणओ य।
चउ चउ पण मेगेगे हुंति पमाया हु पण्णरसा।।(602)

अर्थ : चार विकथा चार कषाय पांच इन्द्रियां निद्रा और प्रणय ये पन्द्रह प्रमाद कहलाते हैं।

भावार्थ : राजकथा, भोजन कथा, देश कथा और चोर कथा ये चार विकथाएँ कहलाती हैं। इन कथाओं के सुनने से वा कहने से पाप का बंध होता है इसलिये इनको विकथा कहते हैं।

क्रोध, मान,माया,लोभ ये चार कषाय हैं। ये भी पाप बंध के कारण हैं। पांचों इन्द्रियों के विषय भी पाप बंध के कारण है न्रिदा पापबंध का कारण ही है तथा स्नेह व प्रणय भी पापबंध का कारण है इसलिये इन सब को प्रमाद कहते हैं तथा इन्हीं प्रमादों के कारण चारित्र की अत्यंत शुद्धता नही होती । प्रमादों के कारण उनमें दोष व अशुद्धि उत्पन्न हो ही जाती है।

इस गुणस्थान में कौन सा ध्यान होता

झायइ धम्मज्झाणं अहं पि य णो कसाय उदयाओ।
सज्झाय भावणाए उवसामइ पुणु वि झाणम्मि।।(603)

अर्थ : छठे गुणस्थान में रहने वाले मुनि धर्मध्यान का चिंतवन करते हैं तथा नो कषाय के उदय होने से उनके आर्तध्यान भी हो जाता है। तथापि स्वाध्याय और रत्नत्रय की भावना के कारण उसी ध्यान से उस आर्तध्यान का उपशम कर देते हैं।

भावार्थ : मुनियों के आर्तध्यान कभी कभी होता है तथा तीन ही प्रकार का आर्तध्यान है निदान नाम का आर्तध्यान नहीं होता। यदि किसी मुनि के निदान नाम का आर्तध्यान हो जाए तो फिर उस मुनि का छठा गुणस्थान ही छूट जाता है।

तज्झाण जाय कम्मं खवेइ आवासएहिं परिपुण्णो।
णिंदण गरहण जुत्तो पडिक्कमण किरियाहिं।। (604)।।

अर्थ : छठे गुणस्थान में रहने वाले वे मुनि अपने छहों आवश्यकों को पूर्ण रीति से पालन करते हैं। तथा उन्हीं आवश्यकों के द्वारा उस स्वल्प आर्तध्यान से

उत्पन्न हुए कर्मों का नाश कर देते हैं। इसके सिवाय वे मुनि उस आर्तध्यान के कारण अपनी निन्दा करते रहते हैं और अपनी गर्हा करते रहते हैं प्रतिक्रमण करते रहते हैं और अपनी समस्त क्रियाओं का पालन करते रहते हैं।

जाव पमाए वट्टइ जावथिरं थाइ णिच्चलं झाणं।

णिंदण गहण जुत्तो आवसइ कुणइ ता भिक्खू।।

अर्थ : वे छठे गुणस्थान में रहने वाले मुनि जब तक प्रमाद सहित रहते हैं, जब तक उनका निश्चल ध्यान अत्यंत स्थिर नहीं होता है तब तक वे मुनि अपनी निन्दा करते रहते हैं गर्हा करते रहते हैं और छहों आवश्यको को पूर्ण रीति से पालन करते रहते हैं।

छट्ट मए गुणठाणे वट्टंतो परिहरेइ छावासं।

जो साहु सोण मुणई परमायम सार संदोहं।। (606)

अर्थ : जो साधु छठे गुणस्थान में रहकर भी छहों आवश्यकों को नहीं करता वह साधु परमागम के सार को नहीं समझता ऐसा समझना चाहिये।

भावार्थ : छठे गुणस्थान में रहने वाले मुनियों को छहों आवश्यक अवश्य करने चाहिये और प्रतिदिन ही करने चाहिये। इनको कभी नहीं छोड़ना चाहिये।

समता वन्दना स्तोत्रं प्रत्याख्यानं प्रतिक्रिया।

व्युत्सर्गश्चेति कर्माणि भवन्त्यावश्यकानि षट्।।

एषः प्रमत्त विरतः साधुमया कथितःसमासेन।

इतः ऊर्ध्वं वक्ष्येऽप्रमत्तं निशामयत।। (613) भाव संग्रह

अर्थ : इस प्रकार मैने प्रमत्त विरत नाम के छठे गुणस्थान का स्वरूप अत्यंत संक्षेप से कहा। अब उसके आगे अप्रमत्त विरत नाम के सातवें गुणस्थान का स्वरूप कहता हूँ, उसे सुनो।

अप्रमत्त गुणस्थान का स्वरूप

णट्ठासेसपमाओ वय गुणसीलेहिं मंडिओ णाणी।

अणुव समुओ अखवओ झाणविलीणोहु अप्पमत्तो सो ।। (614)

अर्थ : जिनके ऊपर लिखे प्रमाद सब नष्ट हो गये हैं, जो व्रत शील गुणों से सुशोभित है जो सम्यग्ज्ञानी है, और ध्यान में सदा लीन रहते हैं तथा जो न तो उपशम

श्रेणी में चढ़ रहे और न क्षपक श्रेणी में चढ़ रहे हैं ऐसे मुनि अप्रमत्त कहलाते हैं।

भावार्थ : सातवें गुणस्थानवर्ती मुनि पांचों महाव्रतों को पालन करते हैं। अट्ठाईस मूलगुणों को पालन करते हैं उपशम श्रेणी व क्षपक श्रेणी में चढ़ने के लिए सन्मुख रहते हैं तथा ध्यान में ही लीन रहते हैं।

पुवुत्ता जे भावा हवंति तिण्णेव तत्थ णायव्वा।

मुक्खं धम्मज्झाणं हवेइ णियमेण इत्थेव।। (615)

अर्थ : इन सातवें गुणस्थान में पहले कहे हुए औपशमिक भाव क्षायिक भाव और क्षायोपशमिक भाव तीनों भाव होते हैं। तथा इस गुणस्थान में नियम पूर्वक मुख्य रीति से धर्मध्यान होता है।

झायारो पुण झाणं झेयं तहहवइफलं च तस्सेव।

ए ए चउ अहियारा णायव्वा होंति णियमेण।। (616)

अर्थ : इस गुणस्थान में चार अधिकार बतलाये हैं ध्यान करने वाला ध्याता, चिंतवन करने रूप ध्यान, जिसका चिंतवन किया जाए ऐसा आत्मा ध्येय और उस ध्यान का फल। ये चार अधिकार नियमपूर्वक इस गुणस्थान में होते हैं।

ध्यान का लक्षण

आहारासणणिद्दा विजाओ तह इंदियाण पंचण्हं।

बावीस परि सहाणं कोहाईणं कसायाणं।। 617

णिस्संगो मिम्मोहो णिग्गय बावार करण सुत्तड्ढो।

दिढकाओ थिरचित्तो परिसआप्तेइ झायारो।। (618)

अर्थ : जिन्होंने आहार का विजय कर लिया है निद्रा का विजय कर लिया हैं, पांचों इन्द्रियों का विजय कर लिया है, जो बाईस परिषहों के विजय करने में समर्थ है, जिसने क्रोधदिक समस्त कषायों का विजय कर लिया है दश प्रकार के बाह्य परिग्रह और चौदह प्रकार अन्तरंग परिग्रहों को सर्वथा त्याग कर दिया है, मोह का सर्वथा त्याग कर दिया है, जिसने अपने समस्त इन्द्रियों के व्यापार का त्याग कर दिया है, जो सिंद्धात सूत्रों का जानकार है, जिसका शरीर अत्यंत दृढ़ जिसका चित्त अत्यंत स्थिर है ऐसा साधु ध्यान करने योग्य ध्याता कहलाता है।

खेत धन धान्य सोना चांदी दासी दास बर्तन कुप्य (वस्त्रादिक) दश बाह्य

परिग्रह है। हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा मिथ्यात्व स्त्रीवेद पुंवेद नपुंसक वेद क्रोध मान माया लोभ ये चौदह अन्तरंग परिग्रह है।

ध्यान का स्वरूप

चित्तणिरोहे झाणं चहुवियभेयं च तं मुणेयव्वं।
पिंडत्वं च पयत्थं रुवत्थं रुववज्जिय चेव।।(619)

अर्थ : चित्त का निरोध करना ध्यान है अर्थात् चित्त में अन्य समस्त चिंतवनों का त्याग कर किसी एक ही पदार्थ का चिंतवन करना उस एक पदार्थ के सिवाय अन्य किसी पदार्थ का चिंतवन न करना ध्यान कहलाता है। उस ध्यान के चार भेद हैं पिंडस्थ पद्स्थ, रूपस्थ, रूपातीत।

मैं हूँ जल सबसे निराला
(जल की आत्मकथा व आत्मव्यथा)
(मैं अमृत स्वरूप को मानव बना रहा विष)

- आचार्य कनकनदी

(चालः तुम दिल की... सायोनारा...)

मैं हू जल सबसे निराला...सब से निराला मेरा काम।
मेरे बिना भी नहीं जीयेंगे... मनुष्य से ले कीट-पतंग।।
मेरे बहु उपयोग के कारण...मेरे पर्यायवाची नाम अनेक।
जल, सलिल, नीर,वारि,सर, क्षर,रस, तोय, वा, उदक।।(1)

पय, पानी,शिव/(शव) जीवन, अमृत...अंबु,अंभ,आब, विष।
भुवन,पाथ, अर्ण,क्षीर,कुश,घृत,कीलाल,गो,वॉटर/(पुष्कर-धातु)।।
यथा नाम है तथा मेरे गुण...मुझे पीने से मैं हूँ पय'।
जैविक रस के कारण भी मैं हूँ अतः मेरा भी 'रस' नाम।। (2)

इससे मनुष्य व पशु-पक्षी...कीट पतंग व नाना पादप।
जीवन जीते इसलिए भी मेरा सार्थक नाम 'जीवन'।।
इसलिए भी मुझे 'अमृत' कहते... तथाहि 'भुवन' 'घृत' व अंभ'।

किन्तु मेरा रुद्र व विकृत रूप से मैं बन जाता हूँ 'विष'।। (3)

पृथ्वी में मेरा निवासस्थान अधिक किन्तु पीने योग्य/(मीठा-स्वच्छ) मैं हूँ अल्प।
तथापि कृतघ्न मानव मुझे अमृत से बना रहा है विष।।
स्व-लालसा के कारण मानव...प्रकृति-पर्यावरण का करता शोषण।
मेरे साथ ही मेरे मित्रों का भी...करता क्रूरतापूर्वक हनन।।(4)

मुद्रारक्षस के कारण फेक्ट्री, यान-वाहन का करे प्रयोग।
भूमि-खनन करता वृक्ष-काटता, पशु-पक्षी आदि का करता हनन।
फेक्ट्री व गटर की गन्दगी मेरे अमृत स्वरूप को बनाता विष।
मैं भी इसका बदला लेने हेतु, विभिन्न रोग(रूप) से करूँ विनाश।। (5)

मेरे विषाक्त होने के कारण, नदी-नाल(तालाब) समुद्र हुए दुषित।
जिससे मेरे आश्रय से जो जीते, उनका भी हो रहा है विनाश।।
अनाज-फल-औषधि-आदि, इसके कारण हो रहे विष।
इसका प्रभाव गर्भस्थ शिशुओं से ले, ध्रुवीय जीवों का करे विनाश।।(6)

इस दृष्टि से मानव समान और कोई नहीं है महादानव।
स्व-पर विश्व अहित कर के, कारण मानव रक्तबीज समान।।
'जीना हैं तो जीने दो' अन्य को, अन्यथा 'मारोगे तो मरोगे'।
'जीओ और जीने दो' संदेश हेतु, 'सूरी कनक' ने रचा मम काव्य।।(7)

(मैं) केवल नहीं हूँ मैं ऱ्हृट रुप में, भौतिकमय निर्जीव रूप।
किंतु मैं हूँ जलकायिक रूप में, एकेन्द्रिय जीव स्वरूप।।
विज्ञान ने अभी सिद्ध किया है, (मेरी) एक बिंदू में त्रसजीव अनेक।
छत्तीस हजार तीन सौ पैंसाठ संख्या में, जीवित रूप में त्रसजीव।। (8)

रहिमन पानी राखीये बिन पानी सब सून।
पानी गये न उबरे मोती-मानुष चुन।
ओबरी 27.12.2017 रात्रि 08:38

पानी हमारे लिए क्यों है जरूरी ?

सबको पता है कि जल ही जीवन है और इसके बिना हम हफ्ते भर से ज्यादा जिंदा नहीं रह सकते। लेकिन, बहुत कम लोग जानते हैं कि यह हमारे शरीर में क्या-क्या काम करता है और हमें कितना पानी पीने की जरूरत है। पानी की कहानी पर

एक नजर :

- औसत वयस्क का शरीर : 57-60% तक पानी
- नवजात शिशु : 79% तक पानी
- उम्र बढ़ने के साथ-साथ हमारे शरीर में पानी घटने लगता है
- अनुमान के मुताबिक हमारे शरीर में दो-तिहाई पानी है

पानी पीने के फायदे

पानी हमारी सेहत के लिए कई वजहों से जरूरी है, जैसे

- शरीर की मैंटेनेंस में मददगार
- पाचन में फायदेमंद
- शरीर के तापमान को नियंत्रित रखता है
- महत्वपूर्ण रासायनिक क्रियाओं के लिए माध्यम मुहैया कराता हैं
- आप जो पानी पीते है उससे जोड़ों को चिकनाहट मिलती है।
- शरीर का कचरा और टॉक्सिन बाहर निकलने में मदद करता है।
- शरीर को आँखों की नमी बनाए रखने में सहायता करता है।
- पानी हमारे शरीर की ग्रोथ में काफी मदद करता है।

पानी से जुड़ी गलतफहमी

आप कितना भी पानी पी सकते हैं

ज्यादा पानी पीने से हाइपरनेट्रमिया जैसी घातक स्थिति बन सकती है। इसे वॉटर इनटॉक्सिकेशन भी कहा जाता है

पानी पीने से वजन घटता है

पानी पीने से आपको वजन घटाने में मदद नहीं मिलेगी। हो सकता है इससे

आप कम खाएं और कम खाने की वजह से वजन घटे

केवल पानी से हाइड्रेशन होता है

यह भी सच नहीं है। पानी अच्छा है, क्योंकि उसमें कैलोरी या शुगर नहीं होती, पर दूध-फलों का जूस भी उत्तम रहता है

कितना पानी पीएं?

कितना पानी पीने की जरूरत है, यह निर्भर करता है कि आपने क्या खाया है, सेहत कैसी है, उम्र कितनी है, मौसम कैसा है और कितना शारीरिक श्रम कर रहे हैं।

पुरुष - 3 लिटर

- 9 लगभग गिलास (325 मिलीलीटर)
- 4 लगभग बोतल(750) मिलीलीटर)

महिलाएं - 2.2 लीटर

- लगभग 7 गिलास (325 मिलीलीटर)
- लगभग 3 बोतल (750) मि.लि.

अप्कायिक जीवों की प्रज्ञापना

अप्कायिक जीव दो प्रकार है-(1) सूक्ष्म अप्कायिक(2) बादर अप्कायिक।

सूक्ष्म अप्कायिक दो प्रकार है- (1) पर्याप्त सूक्ष्म अप्कायिक (2) अपर्याप्त सूक्ष्म अप्कायिक।

बादर अप्कायिक अनेक प्रकार है जैसे-औस, हिम (बर्फ) महिका(गर्भमासों में होने वाली सूक्ष्म वर्षा-कोहरा) ओले, हरतनु (भूमि) को फोड़कर अंकुरित होने वाले गेहूँ घास आदि के अग्रभाग पर जमा हाने वाले जलबिंदु(शुद्धोदक(आकाश में उत्पन्न होने वाला तथा नदी, आदि का पानी) शीतोदक (नदी आदि का शीत स्पर्श परिणत जल) उष्णोदक (झरने आदि का स्वाभाविकरूप से उष्ण स्पर्श परिणत जल), क्षारोदक(खारा पानी) खट्टोदक (खट्टा पानी) अम्लोदक(स्वाभाविक रूप से कांजी सा खट्टा पानी) लवणोदक (लवण समुद्र का पानी) वारूणोदक(मदिरा जैसे स्वाद वाला जल) क्षीरोदक (क्षीर समुद्र का जल(घृतोदक(घृतवर समुद्र का जल) क्षोदोदक(इक्षु समुद्र का जल) रसोदक(पुस्करवर समुद्र का जल)। स्पर्श, रस आदि

के भेद से अन्य प्रकार के भेद वाला जल बादर अप्कायिक समझने चाहिए।

वे ओस आदि बादर अप्कायिक दो प्रकार है (1) पर्याप्तक (2) अपर्याप्तक। उसमें जो अपर्याप्तक हैं वे अपनी पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं कर पाये हैं। उनमें जो अपर्याप्तक है, उनके वर्ण, गंध, रंस, स्पर्श की अपेक्षा से हजारों भेद होते हैं। उनके संख्यात लाख योनि प्रमुख हैं। पर्याप्तक जीवों के आश्रय से अपर्याप्तक आकार उत्पन्न होते है। जहाँ एक पर्याप्तक है, वहाँ, नियम से उसके आश्रय असंख्यात अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं।

जल सजीव है, इसका एक वैज्ञानिक प्रमाण

अभी जापान के एक वैज्ञानिक ने जल पर विविध प्रयोग कर मासारू इमोटो नामक अपनी जापानी भाषा में प्रकाशित पुस्तक में जल के विचित्र प्रयोगों का विस्तृत विवरण प्रकाशित किया है। इस पुस्तक की चार लाख से अधिक प्रतियाँ अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बिक चुकी है जबकि पुस्तक जापानी भाषा में है, अंग्रेजी में नहीं। शुद्ध जल अर्थात् सचित्त जल को दो पात्रों में लिया गया। नल के पानी या क्लोरिन आदि विजातीय तत्त्व मिश्रित जल में यह प्रयोग सफल नहीं हो पाया। पहले पात्र में जल भरकर प्रशंसा के वाक्य कहे गये और दूसरे पात्र में जल भरकर, उन्हें निन्दात्मक वाक्य से संबोधित किया गया। दोनों प्रकार के जल पात्रों को फ्रीज में रखकर जल को जमा दिया। इस प्रकार जल के ऊपर कुछ बर्फ की हल्की-सी परत आ गई। उस परत पर कुछ आकृतियाँ बनी। जिन जल पात्रों में जल की प्रशंसा की गई थी, उस जल के ऊपर बनी बर्फ की परत पर सुंदर पुष्पाकार आकृतियाँ बन गई और जिन जल पात्रों में भरे जल की निन्दा की गई थी, उस जल की परत पर अत्यंत भद्दी कुरूप आकृतियाँ बन गई। यह प्रयोग अनेक बार अनेक देशों में दुहराया गया और हर बार एक-सा ही परिणाम सामने आया। अभिप्राय यह हुआ कि जल हमारी प्रशंसा-निन्दा को सुनता-समझता है और तद्नुकूल अपनी समझदारी भरी प्रतिक्रिया भी देता है। इसे ही लेखक ने जल में छिपा गुप्त संदेश नाम दिया है। प्रश्न होता है कि ऐसा जड़ पदार्थ तो कर नहीं सकता, तो क्या जल चेतना है ? क्या अब हमें नहीं मान लेना चाहिये कि जल जीवित है। एक बात और विचारीण है कि यह प्रयोग उसी जल पर सफल हुआ जो शुद्ध अर्थात जैन शब्दावली में सचित्त था। यह तथ्य जैन मान्यता से अद्भुत साम्य रखता है और तीर्थंकर के सर्वज्ञ होने का

एक अन्य पुष्ट प्रमाण बनता है।

(तुलसी प्रज्ञा के अक्टूबर-दिसम्बर, 08 अंक में प्रकाशित प्रो. दयानंद भार्गव।)

मैं हूँ अग्नि(अग्नि की आत्मकथा व आत्मव्यथा)

- आचार्य कनकनदी

(चालः- आत्मशक्ति...)

मैं हूँ अग्नि सब से निराली, सब से निराला मेरा काम।
दहन करना व पाचन करना (व), प्रकाश फैलाना आदि काम।।
मेरे विविध काम के कारण, मेरे भी अनेक नाम है।
यथा नाम तथा गुण मानव सम न गुण हीन नाम है।। (1)
दहन, पावक, वह्नि, ज्वाला, अनल, कृशानु, तीक्ष्ण है।
प्रचण्ड, हुताशन, हुतभूक, जातवेद, शिखी, वृक है।।
हिमाराति, विरोचन, घनञ्जय, अरूण,आग है।
विभावसु, भास्कर, ज्योति, कीनाश, प्रभाकर, फायर, नाम है (2)

इंधन को जलाने के कारण मेरा 'दहन' नाम है।
खाद्यवस्तु आदि को पकाने के कारण 'पावक' नाम है।
अन्धकार को दूर करके, प्रकाश फैलाना मेरा काम है।
अतएव मेरा यथार्थ नाम, 'भास्कर' रूप आभिराम है।। (3)

मेरे कारण से भी मानव की सभ्यता प्रारंभ हुई।
भोजन बनाना, उपकरण बनाना, आदि में प्रगति हुई।।
मेरी शक्ति को नियंत्रित करके, मानव जब करे सुकाम है।
उसके कारण मानव का होता विकास अभिराम।(अविराम) है।। (4)

मेरी शक्ति का जब (वह) दुरूपयोग करें तब (मैं) बनती हूँ यमसम भी।
तीक्ष्ण, ज्वाला, प्रचण्ड,हुताशन, हुतभूक्, नाम होता यथार्थ भी।
मानव मेरा दुरूपयोग करके, जलाता स्वयं को अन्य को भी।
अग्नेयास्त्र से ले बन्दुक, विस्फोटक आदि रूप में विनाश भी ।।(5)

सदुपयोग के साथ दुरूपयोग भी मेरा न करता कम।
लाक्ष्यगृह दहन से अग्निपरीक्षा व विविध विनाशक काम है।।
मेरा जन्म से अभी तक भी अन्य पशु-पक्षी कीट व पतंग।
मानव समान कोई न करें मुझ से विध्वंसक काम।। (6)

इसलिए तो ऐसा मानव मरकर जाता उतप्त नरक भी।
मानव जन्म में जो किया (मेरा) दुरूपयोग उसका पाता दण्ड भी।।
इससे सीखो तुम मानव करो न किसी का भी दुरूपयोग।
ऐसी शिक्षा देने के हेतु 'सूरी कनक' ने बनाया काव्य।। (7)

ओबरी 28.12.2017 रात्रि 07:45

तैजस्कायिक जीवों की प्रज्ञापना-

तैजस्कायिक जीव दो प्रकार है-(1) सूक्ष्म तैजस्कायिक(2)बादर तैजस्कायिक।

सूक्ष्म तैजस्कायिक जीव दो प्रकार है (1) पर्याप्तक (2) अपर्याप्तक बादर तैजस्कायिक अनेक प्रकार हैं- जैसे अंगार, ज्वाला,(अग्नि से संबंद्ध दीपक की लौ) मुर्मुर (राख में मिले हुए अग्निकण) अर्चि (अग्नि से पृथक हुई ज्वाला या लपट) अलात(जलती हुई मशाल या लकड़ी) शुद्ध अग्नि (लोहे के शोले की अग्नि) उल्का, विद्युत (आकाशीय विद्युत) अशनि(आकाश से गिरने वाले अग्निकण) निर्घात (वैक्रिय संबंधी अशनिपात या विद्युतपात) संघर्ष-समुत्थित(अरणि आदि की रगड़ से पैदा होने वाली अग्नि) सूर्यकांत-मणि-निःसृत(सूर्य की प्रखर किरणों के संपर्क से सूर्यकांत मणि से उत्पन्न होने वाली अग्नि) इस प्रकार की अन्य जो भी अग्नियाँ हैं उन्हे बादर तैजस्कायिक समझना।

बादर तैजस्कायिक पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दो प्रकार है जो अपर्याप्त है वे असम्प्राप्त हैं। जो पर्याप्तक है उनके वर्ण, गंध,रस,स्पर्श की अपेक्षा हजारों भेद हैं। उनके संख्यात लाख योनि प्रमुख हैं। पर्याप्तक तैजस्कायिक के आश्रय से अपर्याप्त तैजस्कायिक उत्पन्न होते हैं। जहाँ एक पर्याप्तक होता है, वहाँ नियम से असंख्यात अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं।

मैं हूँ वायु (वायु की आत्मकथा व आत्मव्यथा)
(धर्म-विज्ञान-पर्यावरण की दृष्टि से)

- आचार्य कनकनदी

(चालः आत्मशक्ति)

मैं हूँ वायु सबसे निराला, सबसे निराला, मेरा काम।
मेरे बिना न जीवित रहेंगें, संसार के प्राणी समूह।।
मेरे भी अनेक पर्यायवाची नाम अनिल, वायु, वात, मारुत
समीर,समीरण, पवमान, पवन, बयार, मलिम्लुच, गन्धर्व, हवा, एयर।।1।।

चर्मचक्षु से (मैं) न दिखाई देता, तथापि सर्वत्र व्याप्त पृथ्वी में।
तो भी मेरा मूल्य सब से अधिक, इस भौतिक जगत् में।।
मेरे बिना सभी प्राणी (जगत्), जीवित न रहेंगे इस धरती में।
सोना चाँदी व हीरा-(नोट) पन्ना, जीवित रह सकेंगे इस धरती में ।2।।

तथापि कृतघ्न मानव भौतिक सम्पदा हेतु मुझे कर रहा प्रदूषित।
यान-वाहन व फेक्ट्री आदि के कारण, मुझे कर रहा है दूषित।।
इसलिए तो मैं भी मानव का, ले रहा हूँ, बदला, अनेक विध।
दमा-खाँसी व सर्दी, एलेर्जी,कैंसर से ले अकाल मरण तक।। 3।।

बौद्धिक विकास भी सही न होता, मेरा प्रदूषण के कारण।
तनाव-थकान से लेकर राग-प्रतिरोधक-क्षमता भी क्षीण।।
इन सब कारणों से पृथ्वी में साल में मरते अस्सी लाख लोग।।
केवल भारत में ही मरते ग्यारह से ले बारह लाख लोग।।4।।

इस के साथ मेरे प्रदूषण से रोगी हो रहे अन्य प्राणी जगत्।
वनस्पति से ले पशु-पक्षी तक, मर रहे हैं अकाल, मरण तक।।
तथापि क्रूर व स्वार्थी मानव न कर रहा है स्वयं को सुधार।
स्व-पर-विश्व घातक बनकर भी, स्वयं को मान रहा है चतुर।।5।।

स्व को छोड़कर इतर प्राणीओं को, मानता है तुच्छ व नीच।
उनके बिना धूर्त व क्रूर मानव, नहीं जी सकता है थोड़े भी दिन।।
स्वयं के जीवन व विकास हेतु, अन्य को भी जीने देना विधेय।
ऐसा महान् उद्देश्य लेकर 'सूरी कनक' ने बनाया मेरा काव्य।।6।।
ओबरी 31.12.2017 रात्रि 2:27

वायुकायिक जीवों की प्रज्ञापना -

वायुकायिक जीव दो प्रकार के होते है- (1) सूक्ष्म वायुकायिक (2) बादर वायुकायिक। सूक्ष्म जीव दो प्रकार के होते है- (1) पर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिक (2) अपर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिक।

बादर वायुकायिक अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे-पूर्वीवात(पूर्व दिशा से बहती हुई वायु) पश्चिमी वायु, दक्षिणी वायु, उत्तरी वायु, ऊर्ध्व वायु, अधोवायु, तिर्यक वायु (तिरछी चलती हुई वायु) विदि्ग वायु (विदिशा में आती हुई वायु), वातोदभ्राम(अनियत अनवस्थित वायु) वातोद्कलिका (समुद्र के समान प्रचण्ड गति से बहती हुई तूफानी हवा) वातमण्डलिका (वातोली) उत्कलिकावात् (प्रचुरतर उत्कलिकाओं-आँधियों से मिश्रित हवा) मण्डलिकावात्(मूलतः प्रचुर मण्डलिकाओं गोल-गोल चक्करदार हवाओं से प्रारंभ होकर उठने वाली वायु) गुंजावत(गूंजती हुई सनसनाती हुई चलने वाली हवा) झंझावत(वृष्टि के साथ चलने वाला अंधड़) संवर्तकवात(खण्ड प्रलयकाल में चलने वाली वायु अथवा तिनके आदि उड़ाकर ले जाने वाली आँधी) धनवात (रत्नप्रभादि पृथ्वीयों के नीचे रही हुई पतली वायु (शुद्धवात(मसक आदि में भरी हुई या धीमी-धीमी बहने वाली हवा (अन्य जितनी भी इस प्रकार की हवायें है उन्हें भी बादर वायुकायिक ही समझना चाहिए।

वे पूर्वाक्त बादर वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे है-जैसे (1) पर्याप्तक (2) अपर्याप्तक। इसमें से जो अपर्यापतक है वे असम्प्राप्त(अपने योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं किये हुए है) इनमें से जो पर्याप्तक है उनके वर्ण की अपेक्षा से, गंध की अपेक्षा से, रस की अपेक्षा से और स्पर्श की अपेक्षा से हजारों प्रकार होते हैं। इनके संख्यात लाख योनि प्रमुख होते है(सूक्ष्म और बादर वायुकायिक की मिलाकर 7

लाख योनियाँ हैं।) पर्याप्तक वायुकायिक के आश्रय से अपर्याप्तक उत्पन्न होते है जहाँ एक (पर्याप्तक वायुकायिक) होता है वहाँ नियम से असंख्यात वायुकायिक होते हैं)।

वायु प्रदूषण से मौत में भारत सबसे आगे

स्टेट ऑफ ग्लोबल एयर 2017 रिपोर्ट के मुताबिक 2015 में वायु प्रदूषण से 10.90 लाख भारतीयों की मौत हुई है। पीएम 2.5 कण प्रदूषण से बीमारियों की सबसे बड़ी वजह रही। 1990 से अब तक प्रदूषण से मौत की दर 48 फीसदी बढ़ी हैं।

परिवार को दें हेल्थ

अगर हम प्रदूषण को खत्म नहीं करेंगे तो देर-सवेर यह हमें मार डालेगा। प्रदूषण एक बढ़ी समस्या है और हमारे शरीर पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ना शुरू हो चुका है। प्रदूषण और स्वास्थ्य पर लैसेन्ट कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2015 में वायु प्रदूषण से पूरी दुनिया में 90 लाख लोगों की समय से पहले मृत्यु हो गई। इनमें से 25 लाख से अधिक लोगों की मौत भारत में हुई थी, जो किसी भी देश में सबसे अधिक है। अस्पतालों की रिपोर्ट के अनुसार एक दिन के भीतर ही प्रदूषण से संबंधित बीमारियों से जूझने वाले मरीजों की संख्या में 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

देश में 2 करोड़ 70 लाख बच्चे वायु प्रदूषण से प्रभावित

नई दिल्ली पत्रिका, ग्रीनपीस इंडिया ने सोमवार को अपनी वार्षिक रिपोर्ट 'एयरपोलिक्लपस' का दूसरा संस्करण जारी किया। इस रिपोर्ट में 280 शहरों के एक साल में पीएस 10 के औसत स्तर का विश्लेषण किया गया है। इन शहरों में देश की 63 करोड़ आबादी रहती है। शेष 47 प्रतिशत आबादी ऐसे क्षेत्र में रहती है जहां की वायु गुणवत्ता के आंकड़े उपलब्ध ही नहीं हैं। इन 63 करोड़ में से 55 करोड़ लोग ऐसे क्षेत्र में रहते हैं जहां पीएम 10 का स्तर राष्ट्रीय मानक से कहीं अधिक है। वहीं देशभर में पांच साल से कम उम्र के 4 करोड़ 70 लाख बच्चे ऐसे क्षेत्र में रहते हैं जहां सीपीसीबी द्वारा तय मानक से 10 का स्तर अधिक हैं।

धीमा जहर है दूषित हवा

प्रदूषित हवा में साँस लेने को हम सब मजबूर हैं, क्या हैं इसके दुष्प्रभाव और क्या हो सकते हैं बचाव...

स्मॉंग हर साल डराता है – जाड़े के मौसम में तापमान कम होने से हवा भी सघन हो जाती है। हवा का बहाव कम रहने और नमी के कारण, वातावरण के दूषित कण इसमें घूल जाते हैं। धूल और धुआँ मिलकर स्मॉंग बनाते हैं। यह भारी होने के कारण वातावरण में नीचे तैरता रहता है, इसलिये यह ज्यादा घातक है, लेकिन अब तो साल के बारह महीने वायु प्रदूषण अपने चरम पर होता है। इसी का परिणाम है कि भारतीयों की औसत उम्र 3-4 साल कम हो गई है। मेडिकल जनरल लान्सेट के अनुसार साल 2015 में देश में पाँच लाख से ज्यादा लोगों की मौत वायु प्रदूषण के कारण हुई।

समय से पहले पैदा हो रहे बच्चे-प्रदूषित हवा का सबसे ज्यादा असर गर्भवती स्त्रियों पर पड़ता है इसका दुष्प्रभाव जन्म लेने वाली संतान के स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। वायु प्रदूषण का थोड़े वक्त का भी कुप्रभाव दीर्घकालिक असर डाल सकता है। अगर माँ लगातार दूषित वायु में रहने को मजबूर है, तो समय पूर्व जन्म संबंधी जटिलताएँ हो सकती हैं और गर्भस्थ शिशु का विकास प्रभावित हो सकता है। भ्रूण को आक्सीजन माँ से मिलती है और अगर वह खराब हवा में साँस ले रही है, तो अजन्मे बच्चे के लिए जोखिम बढ़ जाता है। ऐसे बच्चों को बाद में अस्थमा की शिकायत हो सकती है। इन बच्चों के फेफड़े विकसित नहीं हो पाते। श्वास लेने में दिक्कत के अलावा उनका दिमाग भी विकसित नहीं हो पाता। साथ ही विटामिन डी और कैल्शियम अवशोषित करने की क्षमता पर भी असर पड़ता है। प्रीमेच्योर शिशुओं के अधिकतर अंग जन्म के समय बन तो जाते हैं, लेकिन इनका संपूर्ण विकास जन्म के बाद ही होता है।

प्रतिरक्षा तंत्र पर पड़ता है असर – प्रदूषण के बीच जन्म लेने वाले नवजात शिशुओं के प्रतिरक्षा तंत्र पर भी दीर्घकालिक असर पड़ता है। फेफड़ों सम्बन्धी समस्याओं के अलावा रोग-प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। साथ ही मानसिक विकास में भी व्यवधान उत्पन्न होता है। समयपूर्व जन्मे बच्चों की देखभाल में कंगारू

तकनीक बहुत काम आती है। जन्म के कई दिनों बाद तक बच्चे को उसकी माँ के शरीर के संपर्क में रखा जाता है। इससे समय से पूर्व जन्म लेने वाले बच्चों में होने वाली कई प्रकार की बीमारियों का खतरा टाला जा सकता है। बच्चों के देखभाल की इस विधि को कंगारू केयर कहते हैं। कंगारू की तरह अपने बच्चे की अपनी त्वचा से लगाकर रखने की वजह से ही इसे यह नाम मिला हैं।

खतरे में है मानव जाति

धरती का सामूहिक विलोपन के दौर में प्रवेश, अमेरिका के तीन विश्वविद्यालयों के अध्ययन में खुलासा

अमेरिका के तीन विश्वविद्यालयों के अध्ययन में साफ हुआ है कि दुनिया एक और सामूहिक विलोपन के दौर में प्रवेश कर चुकी है। आशंका जताई गई है कि इसकी चपेट में सबसे पहले इंसान आएंगे। स्टैनफर्ड,प्रिसंटन और बर्कली विश्वविद्यालय का अध्यन कहता है कि जीवों की प्रजातियां सामान्य के मुकाबले 114 गुना ज्यादा रफ्तार से विलुप्त हो रही हैं। इस अध्ययन ने पिछले साल आई ड्यूक यूनिर्वसिटी की रिपोर्ट की पुष्टि की है।

6 करोड़ 50 लाख साल पहले हुई थी ऐसी घटना : नए अध्ययन के अनुसार, हम छठे बड़े सामूहिक विलोपन के दौर में प्रवेश कर रहे हैं। इसी तरह की घटना आज से 6 करोड़ 50 लाख साल पहले हुई थी, जब संभवतः एक उल्कापिंड के टकराने के बाद धरती से डायनोसोर विलुप्त हो गए थे। अध्ययन में यह भी चेतावनी दी गई है कि आने वाली तीन पीढ़ियों के अंदर ही मधुमक्खियों द्वारा होने वाला पॉलिनेशन (परागण फूल के मेल पार्ट से फीमेल पार्ट तक जाना) बंद हो सकता हैं।

115 साल में 400 से ज्यादा जीव लुप्त : वैज्ञानिकों ने जीवों(रीढ़ वाले जानवरों) के विलुप्त होने की स्टडी की तो पाया कि अभी जो विलुप्त होने की रफ्तार है, वह सामान्य के मुकाबले 100 गुणा ज्यादा है। 1900 से लेकर अब तक 400 से ज्यादा जीव लुप्त हो गए हैं। इस तरह का नुकसान सामान्य तौर पर 1 हजार साल में होता है।

खतरा इसलिए : बताया जा रहा है कि जलवायु परिवर्तन प्रदूषण और जंगलों को साफ करने की वजह से ऐसे हालत पैदा हो गए हैं।

रिपोर्ट में कहा गया है कि हम जिस डाली पर बैठे हैं, उसी को काट रहे हैं।

अगर इस तरह ही सब जारी रहा तो धरती को उबरने में कई साल लग जाएंगे और हम बहुत जल्दी विलुप्त हो जाएंगे। – **गेरार्डो सिबैलस, अध्ययन के लेखक**

उठाएं कदम विश्व में श्वसन संबंधी बीमारियों से सबसे ज्यादा मौंते, सूची में भारत और चीन सबसे ऊपर

हर आठवीं मौत का जिम्मेदार वायुप्रदूषण

विश्व में हर आठवी मौत वायु प्रदूषण से हो रही है। यह दुनिया में सबसे बड़ा स्वास्थ्य खतरा बन गया है। यह आंकलन हाल ही मे जिनेवा में डब्ल्यूएचओ की असेंबली में सामने आया। डब्ल्यूएचओ की हालिया रिपोर्ट के अनुसार, पूरी दुनिया में एक दशक के दौरान घर के भीतर और बाहर प्रदूषण के कारण मौत चार गुना बढ़ जाएगी। हर साल वायु प्रदूषण के कारण 80 लाख लोगों की मौत हो रही है। विश्व में वायु प्रदूषण से सबसे ज्यादा प्रभावित देशों में भारत और चीन शामिल है।

छह गुना इजाफा

एम्बिएन्ट एयर पॉप्लूशन की रिपोर्ट में 91 देशों के 1,600 शहरों का ब्योरा दिया है। वर्ष 2000 के मुकाबले वायु प्रदूषण में छह गुना इजाफा हुआ है।

कारण

कोयले से संचालित बिजली संयत्र निजी मोटर वाहनों पर निर्भरता भवनों में ऊर्जा का बड़ी मात्रा में प्रयोग

ये मुफ्त बीमारियां

साँस और हृदय संबंधी फेफड़े का कैंसर तनाव में बढ़ोतरी ज्यादा प्रदूषण से एलर्जी बच्चों में केंसर का खतरा, बच्चों की स्मरण शक्ति और बौद्धिक स्तर में कमी

आप ये कदम उठाएं साइकिल या पैदल चलने की कोशिश करें अपने आसपास से ज्यादा से ज्यादा पेड़-पौधे लगाएं स्वच्छ व ग्रीन ईधन चालित वाहनों का

प्रयोग शहरों में व्हीकल शेयरिंग नीति को बढ़ावा दें।

जरूर जाने

दिल्ली : सबसे प्रदूषित शहर है

20 प्रदूषित शहरों में से 13 भारत में

ब्रिटेन : बंकिघम पैलेस सर्वाधिक वायु प्रदूषित वर्ष 1952 में पांच दिन तक लन्दन शहर रासायनिक धूम कुहरे से घिरा रहा, जिससे 4000 लोग मौतें

चीन : हर साल पांच लाख लोगों की मौत वायु प्रदूषण से

शंघई : 30 फीसदी सरकारी वाहनों पर रोक लगाई

इन्होंने खोला मोर्चा, आप भी आगे आएं

भारत में

महेश चंद्र मेहता : पेशे से वकील। वायु प्रदूषण के खिलाफ मुहिम पर 1996 में गौल्डमैन इनवायरमेंटल प्राइज ताजमहल को वायु प्रदूषण से बचने की मुहिम चला चुके हैं।

रिचर्ड ब्रैनसन

वर्जिन एयरलाइंस के मालिक ने अगले 10 साल तक बायो ईंधन की रिसर्च पर होने वाले खर्च उठाने का फैसला किया है, जो कि करीब 300 करोड़ रूपये है

स्वीडन से सीखें, लगाया कार्बन टैक्स :

दुनिया के सबसे स्वच्छ देशों में से एक स्वीडन ने 'कार्बन टैक्स' लगाकर न सिर्फ पर्यावरण को बचाया बल्कि अपनी आर्थिक स्थिति भी मजबूत की।

टैंक फूल करने पर 20 पैसे/लीटर अतिरिक्त भुगतान इससे कार्बन उत्सर्जन में 9 फीसदी तक की कमी की।

सर्दियों में पाइपलाइनों के जरिए घरों में गरम पानी और हवा पहुंचते हैं। जंगलों के कचरे से करती है गरम

स्टॉकहोम सेंट्रल स्टेशन पर लाखों यात्रियों के शरीर से निकलने वाली ऊर्जा

से ऑफिस को रखते हैं।

जितनी देर कार सड़क पर, उतनी ही ज्यादा फीस

ग्रीन कार खरीदने पर 85 हजार रूपये की छूट।

सबसे प्रदूषित शहर

1. दिल्ली, भारत	2. पटना, भारत
3. ग्वालियर, भारत	4. रायपुर, भारत
5. कराची पाक	6. पेशावर पाक
7. रावलपिंडी, पाक	8. खुरमाबाद, ईरान
9. अहमदाबाद	10. लखनऊ, भारत

सबसे स्वच्छ शहर

1 स्विट्जरलैंउड	2. स्वीडन
3. नॉर्वे	4. कोस्टा रिका
5. कोलंबिया	6. न्यूजीलैंड
7. जापान	8. क्रोएशिया
9. अल्बानिया	10. इजराइल

स्व-आत्म सम्बोधन व निस्पृहता हेतु

निस्पृह सन्त की साधना श/ल मोही सन्त की प्रभावना (अनन्त तीर्थंकर आदि साधु अवस्था में भौतिक निर्माण क्यों नहीं करते ?

- आचार्य कनकनदी

(चाल:- आत्मशक्ति...)

अभी तक हो गये अनन्त तीर्थंकर-गणधर-आचार्य-पाठक साधु।
गौतम बुद्ध व वैदिक ऋषि ईसा व रामकृष्ण से कृष्णमूर्ति।।
गृहस्थ अवस्था में इनमें अधिकतर थे राजा से लेकर साहुकार तक।
गृहस्थ अवस्था के समस्त वैभव त्यागकर बन गये वे निस्पृह संत।। (1)

गृहस्थ अवस्था में भले वे निर्माण किये हो मन्दिर व धर्मशालादि।
किन्तु साधु बनने के अनन्तर नहीं बनाये क्यों मन्दिर धर्मशालादि ?
वे तो थे अधिक दयालु परोपकारी साधु बनने से और अधिक।
तथापि क्यों नहीं किया भौतिक निर्माण इसका समाधान है निम्नोक्त।। (2)

गृहस्थ में नहीं थे पूर्ण त्यागी किन्तु पूर्ण त्याग से बने सन्यासी।
त्यागे हुए को नहीं ग्रहण करते जो यथार्थ से होते निस्पृह सन्यासी।।
भौतिक त्याग सह होता राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोधादि विभाव त्याग।
ख्याति-पूजा-लाभ व याचना-संग्रह, दबाव-प्रलोभन व संक्लेश-द्वन्द।। (3)

आरंभ-परिग्रह व आदेश निर्देश आकर्षण-विकर्षणमय भौतिक काम।
भौतिक विनिमय रूप समस्त काम नौकर से यान-वाहन काम।।
इन सब से होती द्रव्य-भाव हिंसा तथाहि विविध प्रदूषण।
जिससे न होती आत्मविशुद्धि समता-शान्ति से ध्यान-अध्ययन।। (4)

इन सब कारणों से वे न रहेंगे सही साधु हो जायेंगे वे गृहस्थ सम।
इससे उनका होगा आत्मपतन वे न रहेंगे गृहस्थ व साधु-श्रमण।।
ऐसी अवस्था में वे हो जायेंगे उभय भ्रष्ट त्रिशंकु समान होगी अवस्था।
माया मिली न राम अनुसार इह पर लोक में भारी दुर्दशा।। (5)

ऐसे जो होते निस्पृह साधक उनके अनुयायी ही बनते अधिक।
वे स्वेच्छा से प्रेरित होकर करते दान-दया-सेवा-परोपकार त्याग।।
इससे विपरीत जो काम करते उनसे न होता स्व-पर-उपकार।
वे स्वयं संक्लेशित होते उनको मिलता अपमान से कारागार।। (6)

किन्तु जो होते रागी-द्वेषी-मोही(स्वार्थी) वे ये सभी करते रहते।
'लोभी गुरु लालची चेला' हुए नरक में ठेलमठेला' रूप से दुःख सहते।।
श्रद्धा-प्रज्ञा व निस्वार्थी जन ऐसे साधु से दूर रहते।
अन्धश्रद्धालु व स्वार्थी जन ऐसे साधु से स्व-स्वार्थ साधते।। (7)

ऐसे साधु व अनुयायी से परम पावन धर्म होता है कलंकित।
इसलिए तो 'सूरी कनकनन्दी' ऐसे कार्यों से रहते विरक्त।। (8)
ओबरी 04.01.2018 रात्रि 10:20

सन्दर्भ :-

दीक्षा क्या ? क्यों ? कैसी ?

- आचार्य श्री कनकनछी 8/12/2007

''दीयते आत्मज्ञान च क्षीयते सर्व बन्धनमिति दीक्षा' अर्थात् जिससे आत्मज्ञान की उपलब्धि होती है और समस्त बन्धन क्षय होते है उसे दीक्षा कहते हैं। आत्मा ज्ञान से सत्य, तथ्य, परमार्थ, हेय, उपादेय, ग्रहणीय-त्यजनीय, धर्म-अधर्म, स्व-पर, पुण्य-पाप, नीति-अनीति,ध्याता, ध्यान, ध्येय, लक्ष्य, प्राप्य, साध्य-साधन, करणीय-अकरणीय, वीतरागता, समता, शिक्षा, संस्कृति, आध्यात्मिकता आदि का परिज्ञान होता है तथा जिससे भव्यात्मा दीक्षार्थी स्व से भिन्न सम्पूर्ण-समग्र, चेतन-अचेतन मिश्र, शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक, द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म रूपी बन्धनों को आध्यात्मिक साधना के बल पर क्षय करके परमात्मा परमेष्ठी, परमब्रह्म बन जाता हैं उसे दीक्षा कहते हैं। इस प्रक्रिया में वह चार पुरुषार्थों में से केवल 1. धर्म 2.मोक्ष पुरुषार्थ की सतत साधना करता है। वह गृहस्थ सम्बन्धी केवल जीविका निर्वाह के कारणभूत कृषि, वाणिज्य, नौकरी आदि का ही त्याग नहीं करता है परन्तु गृहस्थाश्रम के यथा योग्य आरम्भ-परिग्रह, हिंसा, संकल्प-विकल्प से युक्त दान, पूजा, मन्दिर-मूर्ति-धर्मशाला निर्माण या जीर्णोद्धार आदि का भी त्याग करता है। इस के साथ-साथ ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि, भेद-भाव, अपना-पराया, शत्रु-मित्र, मान-अपमान, संकीर्णता, रूढिवादिता, अन्ध श्रद्धा, क्रोध, लोभ, माया, राग-द्वेष, ईर्ष्या, हीनभाव-अहंभाव, काम-भोग-विलासिता, प्रमाद, दुष्टता, दुर्जनता, उद्दण्डता, परनिन्दा, परअहित चिन्तन-कथन-व्यवहार, आकर्षण-विकर्षण, चिन्ता, संक्लेश, आकांक्षा आदि आदि परभाव/विभाव/बन्धन/अशुद्धता को भी त्याग करता है। इतना ही नहीं उपर्यक्त कुभावों से सहित न हि तप, त्याग, ध्यान-अध्ययन, प्रवचन, प्रभावना, मंत्र-यंत्र-तंत्र आदि की साधना या प्रयोग करता है। यह केवल ही तथा केवल स्व आत्मा को समस्त बन्धन/

अपवित्रता/विभाव/दुःख/संक्लेश से शाश्वतिक रूप से समग्रता से परिमोक्ष करने के लिए सत्य-समता-शान्ति-संतोष-सहिष्णुता-क्षमा-अंहिसा आदि से युक्त होकर ध्यान-अध्ययन, मनन-चिन्तन में सतत संलग्न रहता है। भले ऐसे महात्मा की अन्य भव्यात्मा सज्जन उनकी योग्य सेवा, व्यवस्था, दान-मान-सम्मान, पूजा, आराधना, प्रशंसा, प्रसिद्धि, प्रभावना करते हैं या सरल-सहज-स्वयमेव आनुशांगिक रूप से होती है तथापि वे इससे निलिप्त रहते हैं। वे केवल योग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अनुसार निश्चय-व्यवहार तथा उत्सर्ग-उपवाद के समन्वय/सन्तुलन/सापेक्ष से निश्चय-व्यवहार तथा उत्सर्ग-अपवाद के समन्वय/सन्तुलन/सापेक्ष से आत्मा को परमात्मा बनाने की प्रक्रिया में लीन रहते हैं जो कि अलौकिक/आध्यात्मिक, अभूतपूर्व (स्वयं की अपेक्षा) अद्भुत, अतिमहान, सर्वश्रेष्ठ, सर्वज्येष्ठ कर्तव्य है।

सावज्जजोगपरिवज्जणट्ठं सामाइयं केवलिहिं पसत्थं
गिहत्थधम्मोऽपरमत्ति णिच्चा कुज्जा बुधो अप्पाहियं पसत्थं।। (532)

सावद्य योग का त्याग करने के लिए केवली भगवान ने सामयिक कहा है। गृहस्थ धर्म जघन्य है, ऐसा जानकर विद्वान प्रशस्त आत्महित को करे।

सामायिक करते समय जिससे श्रावक भी श्रवण हो जाता है इससे तो बहुत बार सामायिक करना चाहिए।

सामाइए कदे सावएण विद्वो मओ अरणह्मि।
सो य मओ उद्वादो ण य सो सामाइयं फिडिओ।। (534)

कोई श्रावक सामायिक कर रहा होता है। उस समय वन में कोई हरिण बाणों से बिद्ध हुआ आया और मर गया किन्तु उस श्रावक ने सामायिक भंग नहीं किया।

मोह रागद्वेष वाला श्रमण नहीं

मुज्झदि वा रज्जदि वा दुस्सदि वा दव्वमण्णमासेज्ज।
जदि समणो अण्णाणी बज्झदि कम्मेहिं विविहेहिं।। (243) प्र.सार

आगे कहते हैं जो शुद्ध आत्मा में एकाग्र नहीं होता है उसके मोक्ष नहीं हो सकता है-

(जदि) यदि (समणो) कोई साधु(अण्णं दव्वं आसेज्ज) अपने से किसी

अन्य द्रव्य को ग्रहण कर (मुज्झदि वा) उसमें मोहित हो जाता है (रज्जदि वा) अथवा उसमें रागी होता है (दुस्सदि वा) अथवा उसमें द्वेष करता है (अण्णाणी) तो वह साधु अज्ञानी है इसलिए (विविहेहिं कम्मेहिं) नाना प्रकार कर्मों से (बज्झेदि) बंधता है।

जो निर्विकार स्वसंवेदन ज्ञान से एकाग्र होकर अपने आत्मा को नहीं अनुभव करता है उसका चित्त बाहर के पदार्थों में जाता है तब चिन्दान्दमई एक अपने आत्मा के निज स्वभाव से च्युत हो जाता है फिर राग-द्वेष मोह भावों से परिणमन करता हुआ नाना प्रकार कर्मों को बाँधता है। इस कारण मोक्षार्थी पुरुषों को चाहिए कि एकाग्रता के द्वारा अपने आत्म स्वरूप की भावना करे। यह तात्पर्य है।

समीक्षा – अभी तक अनेक प्रकरण में यह निश्चित किया गया है जो किसी से भी प्रभावित न होकर स्व-आत्मा-स्वरूप में स्थित रहता है वह ही श्रमण है। इससे सिद्ध होता है कि राग-द्वेषादि विषम भावों से युक्त होता है वह श्रमण नहीं है। समता में रहने से यदि कर्म नहीं बंधता है तो विषमता उसके विपरीत भाव होने के कारण विषमता से अवश्य कर्म बंधेगा। इस प्रकार समता एवं विषमता के गुण-दोष जानकर समता का ही अवलंबन लेना चाहिए। परमात्मा प्रकाश में कहा भी है-

जावँइ णाणिउ उवसमइ तामइ संजदु होइ।

होइ कसायहँ वसि गयउ जीउ असंजदु सो।। (पृ. 161 गा. 41)

जिस समय ज्ञानी जीव शांतभाव को धारण करता है, उस समय संयमी होता है तथा जब क्रोधादि कषायों के अधीन हुआ वही जीव असंयमी होता है।

चेल्ला-चेल्ली पुत्थव्यहिं तूसइ मूढु णिभंतु।

एयहिं लज्जइ णाणियउ बंधहँ हेउ मुणंतु।। (पृ. 207 गा. 88)

अज्ञानीजन चेला-चेली पुस्तकादिक से हर्षित होता है, इसमें कुछ संदेह नहीं है, और ज्ञानीजन इन बाह्य पदार्थों से शर्माता है, क्योंकि इन सबों को बंध का कारण जानता है।

चट्टहिँ पट्टहिं कुँडियाहिँ चेल्ला चेल्लियएहिँ।

मोहु जणेविणु मुणिवरहँ उप्पहि पाडिय तेहिँ।। (89)

पिच्छी, कमंडल पुस्तक और मुनि श्रावक रूप चेला, अर्जिका श्रविका इत्यादि

चेला-ये संघ मुनिवरों को मोह उत्पन्न कराके वे उन्मार्ग में (खोटे मार्ग में) डाल देते हैं।

जिस किसी ने जिनवर का भेष धारण करके भस्म से सिर के केशलोंच किये, लेकिन सब परिग्रह नहीं छोड़े, उसने अपनी आत्मा को ही ठग लिया।

जे जिण लिंगु धरेवि मुणि इट्ठ-परिग्गह लेंति।

छद्दि करेविणु ते जि जिय सा पुणु छद्दि गिलंति।। (91)

जो मुनि जिनलिंग को ग्रहण कर फिर भी इच्छित परिग्रहों को ग्रहण करते है, हे जीव, वे ही वमन करके फिर उस वमन को पीछे निगलते हैं।

लाहहँ कित्तिहि कारणिण जे सिव-संगु चयंति।

खीला-लग्गिवि ते वि मुणि देउलु देउ डहंति।। (92)

जो कोई लाभ और कीर्ति के कारण परमात्मा के ध्यान को छोड़ देते हैं, वे ही मुनि लोहे के कीले के लिए अर्थात् किले के समान असार इन्द्रिय सुख के निमित्त मुनि पद योग्य शरीर रूपी देवस्थान को तथा आत्म देव को भव की आताप से भस्म कर देते हैं।

अप्पउ मण्णइ जो जि मुणि गरुयउ गंथहि तत्थु।

सो परमत्थे जिणु भणइ णवि बुज्झइ परमत्थु।। (93)

जो मुनि बाह्य परिग्रह से अपने को महंत (बड़ा) मानता है, अर्थात् परिग्रह से ही गौरव जानता है, निश्चय से वही पुरुष वास्तव में परमार्थ को नहीं जानता, ऐसा जिनेश्वर देव कहते हैं।

जोइय णेहु परिच्चयहि णेहु ण भल्लउ होइ।

णेहासत्तउ सयलु जगु दुक्खु संहतउ जोइ।। (115)

हे योगी! रागादि सहित वीतराग परमात्म पदार्थ के ध्यान में ठहरकर ज्ञान का वैरी स्नेह (प्रेम) को छोड़, क्योंकि स्नेह अच्छा नहीं है, स्नेह में लगा हुआ समस्त संसारी जीव अनेक प्रकार शरीर और मन के दुःख सह रहे है, उनको तू देख ये संसारी जीव स्नेह रहित शुद्धात्म तत्त्व की भावना से रहित है, इसलिए नाना प्रकार के दुःख भोगते हैं। दुःख का मूल एक देहादिक का स्नेह ही है।

जैसे तिलों का समूह स्नेह (चिकनाई) के संबंध से जल से भीगना, पैरों से

खुँदना, घानी में बार-बार पिलने का दुःख सहता है, उसे देखो।

मोक्खु जि साहिउ जिणवरहिं छंडिवि बहु-विहु रज्जु।

भिक्ख भरोडा जीव तुहँ करहि ण अप्पउ कज्जु।। (118)

जिनेश्वर देव ने अनेक प्रकार का राज्य का वैभव छोड़कर मोक्ष को ही साधन किया, परन्तु हे जीव, भिक्षा से भोजन करने वाला तू अपने आत्मा का कल्याण भी नहीं करता।

जिय अणु-मित्तु वि दुक्खड़ा सहण ण सक्कहि जोइ।

चउ-गइ-दुक्खहँ कारणइँ कम्मई कुणहि किं तोइ।। (20)

हे मूढ़जीव! तू परमाणु मात्र (थोड़े) भी दुःख सहने को समर्थ नहीं है, देख तो फिर चार गतियों के दुख के कारण जो कर्म है, उनको क्यों करता है।

स्वेच्छाचारी व्यक्ति दूसरों को भी स्वेच्छाचार में प्रवृत्ति कराता हैं। मनोवैज्ञानिक सिद्धांत है कि व्यक्ति अपने परिसर के व्यक्तियों को भी स्वयं के समान बनाना चाहता है। जैसे जो मद्यपायी होता है उसकी संगति में आने वाले को मद्य पिलाता है तथा जो धूम्रपायी होता है वह अपने मित्रों को धूम्रपान करवाता है। इसलिए तो व्यसन सीखने का एक कारण व्यसनी की संगति भी है। अभी प्रायोगिक रूप में देखा जाता है कि क्लब, होस्टल, परिवार, मित्रमंडली, प्रीतिभोज आदि में अधिकांश व्यक्ति जिस आचार-विचार, खान पान के होते हैं वे दूसरों को भी उसी प्रकार बनाना चाहते हैं। अधिकांश व्यक्ति अशुद्ध खान-पान वाले हैं वे दूसरों को भी अपने समान बनाना चाहते है और वह नहीं बनता है तो उसकी कुछ आलोचना करेंगें। अधिकांश दुर्बल-मानसिक, दृढ़संकल्प हीन व्यक्ति अशुद्ध आचार-विचार वालों के जैसे ही बन जाते हैं। इतना ही नहीं दुर्जन संगति से वाद-विवाद, कलह आदि भी बढ़ता है क्योंकि सबकी विचारधारा अलग-अलग होती है और जब नहीं मिलती तो उसमें टकराव व संघर्ष होता है। इसलिए नियमसार में कुंदकुंद आचार्य ने कहा है-

णाणाजीवा णाणकम्मं णाणविहं हवे लद्धी।

तम्हा वयणविवादं, सगपरसमएहिं वज्जिज्जो।। (156) पू. 422

नाना प्रकार के जीव है नाना प्रकार के कर्म हैं और नाना प्रकार की लब्धियाँ हैं इसलिए स्व और पर समय संबंधी वचन विवाद वर्जित करना चाहिए।

लद्धूणं णिहि एक्को, तस्स फलं अणुहवेइ सुजणत्ते।

तह णाणी णाणणिहिं, भुंजेइ चइत्तु परतत्तिं।। (157)

जैसे कोई निर्धन निधि को पाकर सुजनरूप से गुप्तरूप से उसके फल का अनुभव करता है तैसे ही ज्ञानीजन परजनों के समुदाय को छोड़कर ज्ञाननिधि का अनुभव करता है।

समाधि तंत्र में भी पूज्यवाद स्वामी ने लौकिक जन का संसर्ग त्याग एवं संभाषण त्याग करने को कहा है। यथा -

जनेभ्यो वाक् ततःस्पन्दो मनसश्चित्तविभ्रमाः।

भवन्ति तस्मात्संसर्गं जनैर्योगी ततस्त्यजेत्।। (72) पू. 103

मनुष्यों से अनेक प्रकार की बातें सुनने को मिलती है उन बातों के सुनने से आत्मा में हलन-चलन होती है, उससे मन में विविध प्रकार के क्षोभ या चित्त विक्षेप होते हैं। इस कारण से आत्मध्यान करने वाला मुनि अन्य मनुष्यों के साथ संबंध रखना छोड़ दे।

अज्ञापितं त जानन्ति यथा मा ज्ञापित तथा।

मुढात्मानस्ततस्तेषां वृथा से ज्ञापनश्रम।। (58) प. पर

मूर्ख बहिरात्मा जीव बिना बतलाये गये आत्म स्वरूप को जिस तरह नहीं जानते हैं उसी प्रकार बतलाने पर भी आत्मा स्वरूप को नहीं जानते इस कारण उन मूर्ख बहिरात्माओं के लिए मेरा आत्मा का शुद्ध स्वरूप समझाने का परिश्रम व्यर्थ है।

अभवच्चित्तविक्षेप एकांते तत्वसंस्थितिः।

अभ्यस्येदभियोगेन योगी तत्वं निजात्मनः।। (36) पृ. 212

जिसके चित्त में राग-द्वेष आदि का क्षोभ नहीं है तथा हेय तथा उपादेय तत्व विचार में जिसकी बुद्धि स्थिर है, ऐसा आत्मध्यानी मुनि अकेले निर्जन स्थान में आलस्य तथा निद्रा त्यागकर सावधानी से अपने आत्मा के शुद्ध स्वरूप के चिन्तन का अभ्यास करें। बौद्ध ग्रंथ धम्मपद में कहा है-

चरज्जे नाधिगच्छय्य सेय्यं सदिसमत्तनो।

एक चरियं दल्हं कयिरा नत्थि वाले सहायता ।। (2) पृ 21

विचरण करते यदि अपने से श्रेष्ठ या अपने समान व्यक्ति को न पाये, तो दृढ़ता

के साथ अकेला ही विचरे। मूर्ख से मित्रता अच्छी नहीं।

यावजीवम्पि च बालो पण्डितं पयिरूपासति।

न सो धम्मं विजानाति दब्बी सूपरसं यथा।। (5)

यदि मूर्ख जीवन भर पंडित के साथ रहे तो भी वह धर्म को वैसे ही नहीं जान सकता है, जैसे कि कछली दाल (सूप) के रस को।

लौकिकजन का लक्षण

णिग्गंथो पव्वइदो वट्टदि जदि एहिगेहिं कम्मेहिं।

सो लोगिगो त्ति भणिदो संजमतवसंपजुदो चावि।। (29)

[illegible]

(णिग्गंथो पव्वइदो) निर्ग्रंथ पद की दीक्षा को धारता हुआ **(जदि) यदि (एहिगेहिं कम्मेहिं)** लौकिक व्यवहार में **(वट्टदि)** वर्तता है सो वह साधु (**संजमतवसंपजुदो वि**) संयम और तप सहित है तो भी (**लोगिगोदि भणिदो**) लौकिक है, ऐसा कहा गया है।

जिसने वस्त्रादि परिग्रह को त्याग कर व मुनि पद की दीक्षा लेकर यति पद धारण कर लिया है ऐसा साधु यदि निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय के नाश करने वाले भाव जो अपनी प्रसिद्धि बड़ाई व लाभ के बढ़ाने के कारण, ज्योतिष कर्म, मंत्र,यंत्र, वैद्यक आदि लौकिक गृहस्थों के जीवन के उपायरूप व्यापारों के द्वारा वर्तन करता है तो वह द्रव्य संयम व द्रव्य तप को धारता हुआ भी लौकिक अथवा व्यावहारिक कहा जाता है।

प्रतिज्ञातपरमनैर्ग्रन्थ्यप्रव्रज्यत्वादुदूंसंयमतपभारोऽपि मोहबहुलतया श्लथीकृताशुद्ध चेतनव्यवहारो मुहुर्मनुष्यव्यवहररेण व्याधूर्णमानत्वादैहिककर्मानिवृत्तौ लौकिक इत्युच्यते। (तत्त्वप्रदीपिका)

परम निर्ग्रंथता रूप प्रवज्या की प्रतिज्ञा लेकर जो जीव संयम तप के भार को वहन करता है वह भी यदि मोह की बहुलता के कारण शुद्ध चेतन व्यवहार को छोड़कर निरंतर मनुष्य व्यवहार में चक्कर खाने से लौकिक कार्यों को करता हो तो

लौकिक कहा जाता है।

समीक्षा- कुंदकुंद देव ने इस गाथा में श्रमणाभास या लौकिक श्रमण का वर्णन किया है। उन्होंने केवल गृह व्यापार में लिप्त जनों को ही लौकिक नहीं कहा परन्तु निर्ग्रंथ होकर भी जो आत्मकल्याण को छोड़कर बाह्य कार्यों में रत रहता है उस श्रमण को भी लौकिक कहा है। श्रमण का अर्थ है जो आत्मा के लिए सतत श्रम करे उसे श्रमण कहते हैं, इन्हें साधु भी कहते हैं। कहा भी-

मानमाया मदामर्ष क्षपणात्क्षपणः स्मृतः।

यो न श्रान्तो भवेद्भ्रान्तेस्तं विदुः श्रमणा बुधाः।।(402) य.ति.चम्पू. भा.

गर्व, कपट, मद व क्रोध का क्षय कर देने के कारण साधु 'क्षपण' कहा गया है और अनेक स्थानों में ईर्या समिति पूर्वक विहार करने से थका हुआ नहीं होता, इसलिए विद्वान उसे श्रमण जानते हैं।

निर्ममोनिरहंकरो निर्माणमदमत्सरः।

निन्दायं संस्तवे चैव समधीः शंसितव्रतः।।

जो मूर्च्छा (ममता) से रहित है, अहंकार-शून्य है जो मान, मद व ईर्षा से रहित है जिसके अंहिसा आदि महाव्रत प्रंशसनीय है और जो अपनी निंदा व स्तुति से समान बुद्धि-युक्त(राग-द्वेष शून्य) है अर्थात् जो अपनी निदा करने वाले शत्रु से द्वेष नहीं करता और स्तुति करने वाले मित्र से राग नहीं करता अतः उसे समधी कहते हैं। समंतभद्र स्वामी ने कहा भी है-

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।

ज्ञानध्यान तपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते।।(10) र.श्रा.

जो विषयों की आशा के वश से रहित हो, परिग्रह रहित हो और ज्ञान ध्यान तथा तप रूपी रत्नों से सहित हो वह गुरु प्रशंसनीय है।

जीव अनादिकाल से स्व स्वभाव से बहिर्मुख होकर परभाव में रच रहा है, पच रहा है, रमण कर रहा है इसे ही संसार, भवभ्रमण, परपरिणति कहते हैं। इस समय में जो परिणति होती है। वह स्वरुप से विपरीत होती है इसलिए मोक्ष की गति इससे विपरीत है। इसलिए मुमुक्षु की गति, प्रवृत्ति सांसारिक लोगों की गति से विपरीत होना स्वाभाविक है। इसलिए तो अमृतचंद्र सूरी ने कहा है-

अनुसरतां पदमेतत् करंविताचार नित्यनिरभिमुखा।

एकांतविरतिरुपाभवति मुनीनामलौकिकी वृत्तिः।। (16) (पु.सि.)

इस पद का अनुसरण करने वाले अर्थात् रत्नत्रय को प्राप्त हुए मुनियों की पापमिश्रित आचार से सदा पराङ् मुख (सर्वथा त्याग रूप) लोक को अतिक्रम किये हुए वृत्ति होती है।

ऐसे महाश्रमणों की हर क्रिया, हर आचार-विचार स्वआत्म कल्याण को लक्ष करके होते हैं। वे कोई भी कार्य इसके विपरीत न करते हैं, न करवाते हैं न अनुमोदन करते हैं। दशवैकालिक में कहा भी है-

चउविहा खलु आयार समाही भवइ तं जहा(1) नो इहलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठज्जा (2) नो परलोगट्ठयाए आयार महिट्ठजा(3) नो कित्तिवण्णसदद्सिलोट्ठयाए आयारमहिट्ठेज्जा(4) नन्नत्थ अरहंतेहिं हेऊहि आयारमहिट्ठज्जा।

आचार समाधि के चार प्रकार हैं जैसे- (1) इहलोक के निमित्त आचार का पालन नहीं करना चाहिए(2) परलोक के निमित्त आचार का पालन नहीं करना चाहिए।(3)कीर्ति वर्ण, शब्द और श्लोक के निमित्त आचार का पालन नहीं करना चाहिए परन्तु उपरोक्त भावना से रहित जो अन्य किसी भी लौकिक भावना से प्रेरित होकर धर्म करते हैं उनका धर्म, धर्माभास हैं एवं वह श्रमण भी श्रमणभास हैं। पंचमकाल में कुछ व्यक्ति विशेष लौकिक प्रयोजन से धर्म करते हैं यथा-

भयं दाक्षिण्यं कीर्ति च लज्जया आशा तथैव च।

पंचभि पंचमकाले जैनो धर्मः प्रवर्तते।।

पंचमकाल में लोग जैन धर्म को (1) लोकभय से (2) अपनी योग्यता को प्रदर्शन करने के लिए (3)कीर्ति के लिए (4) लज्जा से (5) आशा से पालन करेंगे। जो मुनि लिंग को धारण करके भी सिद्धि को छोड़कर प्रसिद्धि में लग जाते हैं, प्रभावना के नाम पर परभावना में रत रहते हैं, स्वनिर्माण को छोड़कर भौतिक निर्माण(धर्मशाला, संस्था) में लगे रहते हैं, निहित स्वार्थ के लिए, चमत्कार के प्रदर्शन के लिए, भौतिक उपार्जन के लिए लोक प्रसिद्धि लोकसंग्रह के लिए मंत्र, तंत्र,यंत्र में लगे रहते हैं वे भी श्रमणाभास हैं। ज्ञानार्णव में ध्यान के अयोग्य व्यक्तियों का वर्णन करते हुए कहा है-

लोकानुंरजकैः पापैः कर्मभिगौरवं श्रिताः।

अरञ्जितनिजस्वान्ता अक्षार्थगहने रताः।। (46) पृ. 741

अनुद्धतमनः शल्या अकृताध्यात्मनिश्चयाः।

अभिन्नभावदुर्लेश्या निषिद्धा ध्यानसाधने।। (47)

जो लोगों को रंजित करने वाला पापरूप कार्यों से गुरुता को प्राप्त हैं, नहीं लीन हुआ है आत्मा में चित्त जिनका ऐसे हैं, तथा इन्द्रियों के विषयों की गहनता में लीन हैं, जिनने मन के शल्य को दूर नहीं किया है तथा अध्यात्म का निश्चय नहीं किया है और अपने भावों से दुर्लेश्या को दूर नहीं किया है, ऐसे पुरुष ध्यान साधन में निषेधित हैं। क्योंकि इनमें ध्यान की योग्यता नहीं है।

नर्मकौतुककौटिल्यपापसूत्रोपदेशकाः।

अज्ञानज्वरशीर्णाङ्गा मोहनिद्रास्तचेतनाः।।(48)

अनुद्युक्तास्तपः कर्तुं विषयग्रासलालसाः।

ससङ्गा शङ्किताता भीता मन्येऽमी दैववञ्चिताः।। (49)

एते तृणीकृतस्वार्था मुक्ति श्री सङ्गनिःस्पहः।

प्रभवन्ति न सद्धयानमन्वेषितुमपि क्षणं ।। (50)

जो हास्य, कौतूहल, कुटिलता तथा हिंसादि पाप प्रवृत्ति के शास्त्रों का उपदेश करने वाले हैं तथा मिथ्यात्वरूपी ज्वर रोग से जिनकी आत्मा शीर्ण (रोगी) है विकारयुक्त है, और मोहरूप निद्रा से जिनकी चेतना नष्ट हो गई है, जो तप करने को उद्यमी नहीं है विषयों से जिनकी चेतना नष्ट हो गई है, विषयों की जिनके अतिशय लालसा है जो परिग्रह और शंका सहित है, वस्तु का निर्णय जिनको नहीं है तथा जो भयभीत है मैं ऐसा मानता हूँ कि ऐसे पुरुष दैव के द्वारा ठगे गये हैं। फिर ऐसे पुरुषों से ध्यान कैसे हो सकता है ? इन पुरुषों ने अपने हित को तृण के समान समझ लिया है तथा मुक्ति रूपी स्त्री के संगम करने में निःस्पृह हो गये हैं। इस कारण ये समीचीन ध्यान के अन्वेषण करने को क्षणमात्र ही समर्थ नहीं हो सकते हैं।

पापाभिचारकर्म्मणि सातर्द्धिरसलम्पटैः।

यैः क्रियन्तेऽधर्ममोहाद्वा हतं तैः स्वजीवितं।

जो साता वेदनयीय जनित सुख और अणिमा-महिमादि तथा धनादिक ऋद्धि

तथा रसीले भोजनादिक में लंपट है, मोह से पापाभिचार कर्म करे हैं, उनके लिए आचार्य महाराज खेद सहित कहते हैं कि हाय! इन्होंने अपने जीवन का नाश और अपने को संसार समुद्र में डूबा दिया।

वे पापाभिचार कर्म कौन-कौनसे हैं सो कहते हैं-

वश्याकर्षणविद्वेषं मारणोच्चाटनं तथा।
जलानलविषस्तम्भो रसकर्म रसायनम् ।। (52)
पुरक्षोभेन्द्रजालं च बलस्तम्भो जयाजयौ।
विद्याच्छेदस्तथा वेधं ज्योतिर्ज्ञानं चिकित्सितम्।। (53)
यक्षिणीमन्त्रपातालसिद्धयः कालवञ्चना।
पादुकाञ्चननिस्त्रिंशभूतभोगीद्रसाधनं।। (54)
इत्यादिविक्रियाकर्मरञ्जितैर्दुष्टचेष्टितैः।
आत्मानमपि न ज्ञातुं नष्टं लोकद्वयच्युतैः।। (55)

वशीकरण, आकर्षण, विद्वेषण, मारण, उच्चाटन तथा जल, अग्नि, विष का स्तंभन, रसकर्म, रसायन नगर में क्षोम उत्पन्न करना, इन्द्रजालसाधना, सेना का स्तंभन करना, जीताहार का विधान बताना, विद्या के छेदने का विधान, साधना,वेधना, ज्योतिष्क का ज्ञान वैद्यकविद्या साधन, यक्षिणि, मंत्र, पातालसिद्धि के विधान का अभ्यास करना, कालवचन (मृत्यु जीतने का मंत्र साधना) पादुकासाधन (खड़ाऊँ पहनकर आकाश विहार करने की विद्या का साधन) करना, अदृश्य होने तथा गड़े हुए धन देखने के अंजन की साधना, शस्त्रादिकी साधना, भूतसाधना, सर्पसाधन इत्यादि विक्रिया रूप कार्यों में अनुरक्त होकर दुष्ट चेष्टा करने वाले जो हैं। उन्होंने आत्मज्ञान से भी हाथ धोया और अपने दोनों लोक के कार्य को भी नष्ट किया ऐसे पुरुषों के ध्यान की सिद्धि होनी कठिन हैं।

यतित्वं जीवनोपायं कुर्वन्तः किं न लज्जिताः।
मातुःपण्यमिवालम्ब्य यथा केचिद्गतघृणाः।। (56)
निस्त्रपाः कर्म कुर्वन्ति यतित्वेऽप्यतिनिन्दितम्।
ततो विराध्य सन्मार्गं विशन्ति नरकोदरे।। (57)

कई निर्दय, निर्लज्ज साधु पर से भी अतिशय निंदा करने योग्य कार्य करते हैं।

वे समीचीन हितरूप मार्ग का विरोध कर नरक में प्रवेश करते हैं। जैसे कोई अपनी माता को वेश्या बनाकर उससे धनोपार्जन करते हैं तैसे ही जो मुनि होकर उस मुनि दीक्षा को जीविका का उपाय बनाते हैं और उसके द्वारा धनोपार्जन करते हैं वे अतिशय निर्दय तथा निर्लज्ज हैं।

अविद्याश्रयणं युक्तं प्रागगृहावस्थितैर्वरम्।
मुक्त्यङ्गं लिङ्गमादाय न श्लाध्यं लोकदम्भनं।।

जो गृहस्थावस्था में हैं उनको तो ऐसी अविद्या का आश्रय करना कदाचित् युक्त भी कहा जा सकता है परन्तु मुक्ति के अंगस्वरूप मुनि के भेष को धारण करके लोक का ठगना कदापि प्रशंसनीय नहीं है।

मनुष्यत्वं समासाद्य यतित्वं च जगन्नतुम्।
हेयमेवाशुभं कार्य विवेच्य सुहितं बुधैः।।

मनुष्य भव पाकर, उसमें फिर जगत्पूज्य मुनि दीक्षा को ग्रहण करके विद्वानों को अपना हित का विचार करके अशुभ कर्म अवश्य ही छोड़ना चाहिए।

अहो विभ्रान्तचित्ताना पश्य पुसां विचेष्टितम्।
यत्प्रञ्चैर्यतित्वेऽपि नीयते जन्म निःफलम्।।

आचार्य महाराज कहते हैं कि देखो भ्रमरूप चित्तवाले पुरुषों की चेष्ट साधुपन में भी पाखंड प्रपंच करके जन्म को निष्फल कर देती है।

लिंग पाहुड में तो कुंदकुंदाचार्य ने भ्रष्ट श्रमण को तिर्यंचादि शब्द से संबोधन करके कटु प्रहार किया है। यथा -

धम्मेण होइ लिंगं ण लिंगमत्तेण धम्मसंपत्ति।
जाणेहि भावधम्मं किं ते लिंगेण कायव्वो।। (2) पृ. 683

धर्म से ही लिंग होता है। लिंगमात्र धारण करने से धर्म की प्राप्ति नहीं होती है इसलिये भाव को धर्म जानो। भाव-रहित लिंग से तुझे क्या कार्य हैं?

जो पावमोहिदमदी लिङ्गं घेत्तुण जिणवरिंदाणं।
उवहसइ लिंगिं भावं लिगं णासेदि लिंगीणं।। (3)

जिसकी बुद्धिपाप से मोहित हो रही है ऐसा जो पुरुष जिनेन्द्र देव के लिंग को नग्न दिगम्बर वेष को ग्रहण कर लिंगी के यथार्थ भाव की हँसी करता है वह सच्चे

वेषधारियों के वेष को नष्ट करता है अर्थात् लजाता है।

कलहं वादं जूवा णिच्चं वहुमाणगव्विओ लिंगी।

वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण। (6)

जो पुरुष मुनि लिंग का धारक होकर भी निरन्तर अत्यधिक गर्व से युक्त होता हुआ कलह करता है, वाद-विवाद करता है अथवा जुआ खेलता है। वह चुंकि मुनि लिंग का धारक होकर भी निरंतर ऐसे कुकृत्य करता है अतः पापी है और नरक जाता है।

जो जोडदि विव्वाहं किसिकम्मवणिज्जजीवघादं च।

वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण।।(9)

जो मुनि का लिंग रखकर भी दूसरों के विवाह संबंध जोड़ता है तथा खेती और व्यापार के द्वारा जीवों का घात कराता है वह चूँकि मुनि लिंग के द्वारा इस कुकृत्य को करता है अतः पापी है और नरक जाता है।

कंदप्पा इय वट्टइ कारमाणो भोयणेसु रसगिद्धिं।

मायी लिंगविवाई तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। (12)

जो पुरुष मुनि वेषी होकर भी कंदर्पी आदि कुत्सित भावनाओं को करता है तथा भोजन में रस संबंधी लोलुपता को धारण करता है वह मायाचारी मुनिलिंग को नष्ट करने वाला पशु है, मुनि नहीं है।

धावदि पिंडणिमित्तं कलहं काऊणः भुज्जदे पिडं।

अपरूपरूई संतो जिणमग्गि ण होइ सो समणो।। (13)

जो आहार के निमित्त दौड़ता है कलह कर भोजन को ग्रहण करता है और उसके निमित्त दूसरों से ईर्ष्या करता है वह जिनमार्गी श्रमण नहीं है।

गिण्हदिं अदत्तदाणपरणिंदा वि य परोक्खदूसेहि।

जिणलिंग धांरतो चोरेण व होइ सो समणो।। (14)

जो मनुष्य जिन लिंग को धारण करता हुआ भी बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण करता है तथा परोक्ष में दूषण लगाकर दूसरे की निंदा करता है वह चोर के सामन है साधु नहीं है।

पव्वज्जहीणगहिणं णेहं सीसम्मि वट्टदे बहुसो।

आयारविणयहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। (18)

जो दीक्षा से रहित गृहस्थ शिष्य पर अधिक स्नेह रखता है तथा आचार और विनय से रहित है वह तिर्यंच है साधु नहीं है।

एवं सहिओ मुणिवर संजदमज्झम्मि वट्टदे णिच्चं।

बहुलं पि जाणमाणो भावविणठो ण सो सवणो।। (19)

हे मुनिवर! ऐसी खोटी प्रवृत्तियों से सहित मुनि यद्यपि संयमी जनों के मध्य में रहता है और बहुत ज्ञानवान भी हो तो भी वह भाव से नष्ट है। अर्थात् भावलिंग से रहित है यथार्थ मुनि नहीं है।

दंसणणाणचरित्ते महिलावग्गम्मि देदि वोसट्ठो।

पासत्थ वि हु णियट्ठो भावविणट्ठो ण सो समणो।। (20)

जो स्त्रियों में विश्वास उपजा कर उन्हें दर्शन, ज्ञान और चारित्र देता है वह पार्श्वस्थ मुनि से भी निकृष्ट है तथा भावलिंग से शून्य वह परमार्थ मुनि नहीं है।

धम्मपद में महात्मा बुद्ध ने कहा भी है-

असतं भावनमिच्छेण्य्य पूरक्खारञ्च भिक्खुसु।

आवासेसु च इस्सरियं पूजा परकुलेसु च।

ममेव कतमञ्ञन्तु गिही पब्बजिता उभो।

ममेवातिवसा अस्सु किच्चाकिच्चेसु किस्मिचि।

इति बालस्स सङ्कप्पो इच्छा मानो च वड्ढति। (15) (पृ. 24)

भिक्षुओं के बीच अगुआ होना, मठों का अधिपति बनना, गृहस्थ परिवारों में पूजित होना, गृही और प्रव्रजित दोनों मेरा ही किया माने सभी प्रकार के काम में वे मेरे ही अधीन रहे ऐसा मूर्ख का संकल्प होता है जिससे उसकी इच्छा और अभिमान बढ़ते हैं।

(अञ्ञहि लाभूपनिसा अञ्ञा निब्बानगामिनी)।

एवमेतं अभिञ्ञाय भिक्खु बुद्धस्स सावको।

सक्कारं नाभिनन्देय्य विवेकमनुब्रूहये।। (16)

लाभ का रास्ता दूसरा है और निर्वाण को ले जाने वाला दूसरा इस प्रकार इसे

जनकर बुद्ध का अनुगामी भिक्षु सत्कार का अभिनंदन न करे और विवेक (एकांतवास) को बढ़ावे।

न वाक्करणमत्तेन वण्णपोक्खरताय वा।

साधुरूपो नरो होति इस्सुकी मच्छरी सठो।। (7) (पृ. 83 ध.ध.)

ईर्ष्यालु, मत्सरी और शठ पुरुष वक्ता या रूपवान् होने मात्र से साधु-रूप नहीं होता।

न मुण्डकेन समणो अब्बतो अलिकं भणं।

इच्छालाभसमापन्नो समणो किं भविस्सति।

जो व्रतरहित, मिथ्याभाषी है वह पण्डित होने मात्र से श्रमण से नहीं होता, इच्छा-लाभ से भरा (पुरुष) क्या श्रमण होगा ?

कुसो यथा दुग्गहीतो हत्थमेवानुकन्तति।

सामञ्ञं दुप्परामट्ठं निरयाय उपकड्ढति।। 0(6) (पृ. 98 निरयवग्गो धम्मपद)

जैसे ठीक से न पकड़ने से कुश हाथ को ही छेदता है इसी प्रकार श्रामण्य ठीक से न ग्रहण करने पर नरक में ले जाता है।

मिद्धी यदा होति महग्घसो च

निद्दायिता सम्परिवत्तसायी।

महावराहो व निवापपुट्ठो

पुनुप्पुनं गब्भमुपेति मन्दो। (6) पृ. 102 नाग वग्गो धम्मपद

आलसी, बहुत खाने वाला, निद्रालु, करवट बदल-बदल कर सोने वाला, खिला-पिलाकर पुष्ट किये मोटे सूअर की तरह मंद (अभागा) बार-बार गर्भ में पड़ता है।